तार के खम्भे

[चुनी हुई श्रेष्ठ कहानियाँ]

अनुवादक
सत्यजीवन वर्म्मा, एम० ए०
[श्रीभारतीय]

हमारी अन्य पुस्तकें

१—रुमानिया की कहानियाँ	...	१॥)
२—जानी दुश्मन (")	...	१।।।)
३—सोलह कहानियाँ	...	२)
४—एलबम (शब्द-चित्र)	...	१।।।)
५—मनोहर कहानियाँ भाग १	...	॥)
६— " " " २	...	॥)
७— " " " ३	...	१)
८—आकाश की झाँकी (सचित्र)	...	१)
९—चीनी यात्री सूयेन च्वाँग	...	१॥)
१०—हिन्दी के विराम-चिह्न	...	।।।)
११—नये-चित्र (कहानियाँ)	...	२)
१२—एशिया की कहानियाँ		छप रही हैं।
१३—खलीफा (कहानियाँ)		
१४—लेखनी उठाने के पूर्व		

प्रथम संस्करण

मूल्य १॥)

मुद्रक और प्रकाशक—

ए० बी० वर्म्मा, शारदा प्रेस, नया-कटरा-प्रयाग

परिचय

हमारे देश की अपेक्षा पाश्चात्य देशों का कहानी-साहित्य बहुत ही सम्पन्न है, इसे स्वीकार करते हमारे अहंकार को आघात न पहुँचनी चाहिए। यदि हमें अपनी भाषा के साहित्य को उच्चकोटि का बनाना है तो हमें अन्य देशों के सम्पन्न, उन्नत साहित्य का अध्ययन करना होगा; उनके स्टैंडर्ड को देखकर, समझकर अपने साहित्य का आदर्श निश्चय करना होगा। इसी दृष्टि से जब कभी मेरे सामने कोई अच्छी रचना आती है और जिसका आदर्श और स्टैंडर्ड हिन्दी पाठकों के काम का होता है तो मैं उसका रूपान्तर उनके सम्मुख उपस्थित करने के प्रलोभन का संवरण नहीं कर पाता। इसी प्रकार अनुवादित कुछ कहानियों का संग्रह पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया जा रहा है। आशा है इन्हें पढ़कर पाठकों का मनोरंजन होगा और लेखक गण भी उनकी शैली आदि का परिचय पाकर कहानी-साहित्य की रचना में नई प्रेरणा पा सकेंगे।

अन्तर्वेदी
नया कटरा—प्रयाग
१५-११-४५.

श्रीभारतीय

विषय-सूची

तार के खम्भे

अभी हाल ही में अनाथालय का निरीक्षण करते समय महारानी साहबा ने एक विचित्र दृश्य देखा। चार लड़के एक फटी पुस्तक के लिए छीना-झपटी कर रहे थे और एक दूसरे को मारने के लिए मुक्की दिखा रहे थे।

"क्यों—क्यों लड़को! यह क्या? क्यों लड़ रहे हो?" रानी साहबा ने चिल्लाकर कहा। उन्हें यह दृश्य देखकर आघात पहुँचा था—"यदि लड़ोगे तो तुममें से किसी को मिठाई न मिलेगी और चपत ऊपर से खानी पड़ेगी।"—उन्होंने कहा।

"उसने मेरी किताब छीन ली।" एक लड़के ने अपने अपराध की सफ़ाई में कहा।

"झूठ। उसने स्वयं मुझसे मेरी छीन ली है।"—दूसरा कहने लगा।

"तुम बड़े झूठे हो"—तीसरे ने मुँह बनाकर कहा—"क्यों, तुमने मुझसे पुस्तक नहीं छीनी थी?"

देख-रेख करनेवाली दाई ने तब रानी साहबा को समझाया कि 'कड़ी निगाह रखने पर भी बच्चे इस प्रकार अक्सर लड़ ही जाया करते हैं। वास्तव

में बात यह है कि अनाथालय में पुस्तकों की कमी है और लड़के पुस्तक पढ़ने के लिए लालायित रहते हैं।'

महारानी साहबा के मन में एक विचित्र विचार का उदय हो उठा। परन्तु उस पर विचार करने का कष्ट उठाना उनके लिए बहुत भारी परिश्रम था। अतः, उन्होंने उसे भुलाने का प्रयत्न किया। पर एक दिन जब प्रधान मन्त्री के यहाँ निमंत्रण में वे पधारीं तो प्रसङ्गवश किसी धार्मिक तथा सार्वजनिक हित के प्रश्न पर विवाद चल पड़ा। उस समय रानी साहबा को अनाथालयवाला दृश्य स्मरण हो आया। उन्होंने उस दिन की घटना का सविस्तार वर्णन किया और दाई द्वारा दी गई सफ़ाई भी सुनाई।

मन्त्री महोदय के मन में भी उन बातों को सुनकर एक विचित्र भाव उठा। वे सोचने के अभ्यासी थे, अतः उन्होंने प्रस्ताव किया कि यदि कुछ पुस्तकें अनाथालय को प्रदान कर दी जायँ तो अच्छी बात हो। बात यह हुई कि मन्त्री जी को स्मरण हो आया कि उनके घर पर अल्मारियों में या बक्सों में कुछ पुस्तकें पड़ी हैं, जिन्हें उन्होंने कभी अपने बच्चों के लिए ख़रीदी थीं। परन्तु उन्हें ढूँढ़ना और एकत्र कर अनाथालय भेजना, यह बखेड़ा मन्त्री महोदय के मान का न था।

उसी दिन सन्ध्या को मन्त्री महोदय 'सर अमुक' के यहाँ योंही जा पहुँचे। 'सर अमुक' का सारा जीवन जनता के उन 'प्रतिनिधियों' की छोटी-मोटी सेवा बजाने में बीता था, जिन्हें सरकारी मोहकमों में भिन्न-भिन्न श्रेणी के 'अफ़सर' कहते हैं। 'सर अमुक' को आभारी बनाने के लिए मन्त्री महोदय ने महारानी साहबा के मुख से सुनी अनाथालय की बात कह सुनाई और प्रधान मन्त्री की हैसियत से उन्होंने इतना और अपनी तरफ़ से जोड़ दिया—"हाँ जी, बात तो ठीक है। कुछ पुस्तकें अवश्य अनाथों के लिए भिजवानी चाहिए।"

"यह कौन सी बड़ी मुश्किल बात है"—'सर अमुक' ने कहा—"कल मुझे 'दूत' के सम्पादक से मिलना है। मैं इसका प्रबन्ध कर दूँगा कि अनाथालय के लिए पुस्तकों के लिए कोई अपील शीघ्र छप जाय।"

'सर अमुक' ऐसे समय 'दूत' के दफ़्तर में पहुँचे, जब सम्पादक जी अपने पत्र के लिए कोई सनसनी फैलानेवाले समाचार की अनुपस्थिति में अपनी कल्पना-शक्ति की दुम ऐंठ रहे थे। उनके सहकारी ने तुरन्त 'सर अमुक' की बात सुनकर एक लेख का शीर्षक रच डाला :—

"अनाथ—हमारे बच्चे—पुस्तकों के लिए तड़-

पना—विद्या की विचित्र लगन—उनकी ज्ञान-पिपासा शान्त कीजिए !"

सब ठीक-ठाककर वह सन्तोष से सीटी बजाता हुआ खाने-पीने चल गया।

दो दिन पश्चात् रविवार को मैं यूनीवर्सिटी के विज्ञान-विभाग के अध्यापक अपने मित्र के साथ टहलकर लौटते समय 'दूत' के दफ़्तर की ओर से जा निकला। मैंने देखा, सम्पादक के कमरे के सामने मैला-कुचैला वस्त्र पहने दरिद्र-सा एक आदमी खड़ा है। उसी के समीप दुबली-पतली, गन्दे, फटे कपड़े पहने एक लड़की कुछ पुरानी पुस्तकें लिये खड़ी थी।

"क्या चाहते हो ?"—प्रश्न हुआ।

उस दरिद्र ने सलाम कर दबी ज़बान से कहा—"हम लोग कुछ पुस्तकें लाये हैं। आपने अनाथालय के बच्चों के लिए माँगी थीं।"

छोटी लड़की ने नम्रता से सिर झुकाया, उसके चेहरे पर लज्जा की लाली न दीख पड़ी—रक्त ही कहाँ था !

मैंने पुस्तकें ले लीं और उन्हें 'दूत' के दफ़्तर के चपरासी के सुपुर्द कर दीं।

"आपका शुभ नाम ?"—मैंने पूछा।

"नाम पूछकर आप क्या करेंगे।" उस व्यक्ति ने घबराहट से कहा।

"क्यों'—ये लोग पुस्तक-दाता का नाम प्रकाशित करेंगे।"

"क्यों ? क्या यह आवश्यक है ? नहीं, महोदय! मैं ग़रीब आदमी हूँ—मामूली मजूर। मेरा नाम प्रकाशित करके क्या होगा ?"—उसने दाँत निपोर-कर कहा।

वह चला गया—अपनी दुबली-पतली लड़की को लेकर।

जाने क्यों, कदाचित् विज्ञान के अध्यापक के कारण, मेरे मन में यह विचार उठा कि एक नये तरीक़े से समाचार भेजे जा सकते हैं, जो तार ही की भाँति है। इसका प्रधान केन्द्र अनाथालय है। समाचार पहुँचाना है गरीबों के घर। एक ने कहा दूसरे ने सुना। अनाथालय से माँग हुई, मजूरों ने उसे पूरी की।

हम सब बड़े लोग तो इस तार के खम्भे मात्र हैं!*

---

*पोलैण्ड की एक कहानी के आधार पर।

परित्यक्त

जुड़ावन की नींद टूटी तो बच्चे का रोना उसके कानों में पड़ा। आँखें बिना खोले ही उसने अपनी भार्या को पुकारा—"सुनती है री! लौंडा चिचिया रहा है।"

कोई उत्तर न मिला। उसने चारों ओर आँखें दौड़ाईं। जान पड़ा मानों वह घर में नहीं है। उसे कुछ आश्चर्य हुआ, फिर उसने सोचा—सवेरे बाहर गई होगी। उसने रुई की बत्ती उठा ली और उसे बच्चे के मुँह में ठूँस दिया, जिसमें वह उसे चूसने लगे। फिर वह उठकर हाथ-मुँह धोने लगा।

कुल्ली करते हुए वह सोचने लगा—"आखिर कल जो 'माल' हाथ लगा है सोनार उसका कितना देगा।" यह सोचकर उसकी इच्छा हुई कि ज़रा उसे एक बार फिर तो देख लूँ, कुछ अन्दाज़ लग जायगा। वह तुरन्त चारपाई पर चढ़, छप्पर और दीवार के बीच कुछ ढूँढने लगा। वहाँ कुछ न मिला। वह बड़बड़ाने लगा—"अरे! यहीं तो रक्खा था। चाँदी के दो छोटे-छोटे कड़े थे—हो क्या जायेंगे!" उसने

आस-पास सभी जगह टटोला। कहीं कुछ न हाथ लगा। उसने चारपाई खड़ीकर उस पर चढ़, भली भाँति चारों तरफ़ आस-पास देखा। छप्पर से ढँकी मिट्टी की दीवार का गड्ढा केवल गर्द से भरा था। उसमें सिवा अँगुलियों के निशान के और कुछ न दिखाई पड़ा—"एक दम ग़ायब! ले कौन गया! यहीं तो मैंने रक्खा था। एँ?"

एकाएक उसे कुछ ध्यान आया। वह दौड़ा हुआ उस कोने में पहुँचा जहाँ टूटे हुए कुण्डे में उसकी स्त्री अपनी चीज़ें रखती थी। उसने पहुँचते ही उसमें हाथ डाल दिया। उसके नाख़ून पेंदे से टकरा कर झनझना उठे। उसने सीके की ओर आँखें उठाईं। सीका ख़ाली उसके सिर से टकरा कर झूल रहा था। अब उसे ध्यान हो उठा, मानों उसकी लुगाई भाग गई।

"किसके साथ?"—उसके मन में प्रश्न उठा।

"सुखुआ के साथ—हमिदवा?"

"अच्छी बात है—जा ससुरी। चूल्हे में जा। चूल्हे में जा। यहाँ किसे पड़ी है—किसका क्या बिगड़ता है"—वह बड़बड़ाने लगा और अपनी बेफ़िक्री की तरङ्ग में उसने बच्चे की ओर बढ़ते हुए कहा—"बड़ा मज़ा हुआ! कहो बेटा! ह-ह-ह-ह! क्या राय है हा-हा-हा!"

उसने बच्चे को एकटक देखा फिर अपने आप कहने लगा, "पर इस पिल्ले का क्या होगा।" वह कुछ उत्तेजित होकर फिर कहने लगा—"अगर पता पा जाऊँ कि वह कुतिया कहाँ गई, तो ले जाकर उसके सामने पटक दूँ इसे कि, ले जा अपना जंजाल।"

एकाएक उसके मन में कोई भयङ्कर बात उठ पड़ी। उसके चेहरे का रङ्ग बदल उठा। उसने दाँतों तले अपनी जीभ दबा ली। एक बार जैसे वह चौंक उठा। वह बच्चे के समीप जा पहुँचा। बच्चा टूटी चारपाई पर पड़ी गुदड़ी में लेटा हुआ अपनी दोनों मुट्ठियाँ चूसता हुआ पैर धुन रहा था। उसके पेट पर पड़ा हुआ फटे कम्बल का टुकड़ा खिसककर पैताने आ गया था। उसका मुँह देखकर जुड़ावन को किसी का ध्यान आ गया। जान पड़ा मानों वह उसका परिचित हो। उसे ठीक स्मरण नहीं आ रहा था, कौन?

बच्चे को बिना छुए ही वह घर में टट्टी लगाकर बाहर चल पड़ा। वह इधर-उधर भटकने लगा। उसका चित्त शान्त न था। उसे जान पड़ा मानों बच्चा रोता हुआ उसे पुकार रहा था। उसकी आँखों के सामने मानों बच्चा अपने छोटे-छोटे हाथ-पैर फेंकता हुआ जोर-जोर से चिल्ला रहा था। उसका जी न माना। वह लौट पड़ा। क्रोध में उसने दाँत

पीस कर कहा—"अगर पा जाऊँ उस औरत की ज़ात को—तो बस! बस धर कर गला दबा दूँ उस हरामज़ादी का! कुतिया नहीं तो!"

वह पड़ोस की दूकान पर एक कश तम्बाकू पीकर फिर घर पहुँचा। बच्चा उसी भाँति नङ्ग-धड़ङ्ग हाथ-पैर फेंकता हुआ मुसकरा रहा था। जुड़ावन फिर घर से बाहर चला, परन्तु वह घर न छोड़ सका। उसे ऐसा जान पड़ा मानों वह बच्चा फिर रोने लगा था। उसका हृदय मसोस उठा। क्रोध से विह्वल होकर वह दाँत पीसता हुआ लौट पड़ा। इस बार बच्चा सचमुच रो रहा था।

"हरामज़ादी! डायन! छोड़कर चलती बनी—अपने तो भाड़ में गई, पर इसे छोड़ती गई। जा तुझे कीड़े पड़ें!"

उसने बच्चे को गोद में उठा लिया। वह उसकी छाती से चिपक कर कुछ ढूँढ़ने लगा।

"तुझे महामाई पूछें—कुतिया!" उसने बच्चे को चुप कराना चाहा। वह उसे थपथपाने और हिलाने लगा—"चुप हो जा बेटा! मुन्ना! चुप हो जा!"

बच्चा उसी भाँति उसके हृदय से चिपका हुआ हाथों और मुँह से कुछ ढूँढ़ रहा था। जुड़ावन ने उसे कसकर छाती से चिपका लिया और घर में दूध ढूँढ़ने लगा। थोड़ा-सा दूध प्याले में पड़ा हुआ

गाढ़ा हो रहा था। उसने रुई की बत्ती भिगो कर बच्चे के मुँह में डाल दी और उसे पुचकारने लगा—"पी ले पेटा ! तेरी माँ डायन है, उसे महामाई उठा ले जायँ। कुतिया है ! कुतिया भी अपने बच्चे को ऐसे छोड़कर नहीं जाती। मत रो बेटा—मैं तुझे अपने पास रक्खूँगा। मेरे बच्चे—मैं तुझे पालूँगा—जाने दे उस औरत को—"

बच्चा चुप हो चुका था। वह उसे एक चीथड़े में लपेटकर चिपकाकर बाहर निकला। कञ्जर पड़ोसियों ने देखा तो दौड़ पड़े। एक ने पूछा, "जुड़ावन भैया, किसका बच्चा है ?" सुखदेइया अपने लट छितराये उसे गोद में लेने को लपकी। अपनी मैली ओढ़नी से बच्चे का मुँह पोंछकर, वह उसे उछाल-उछालकर खेलाने लगी और लगी चूमने और प्यार करने। वह पूछने लगी—"यह तुम्हारा लड़का है न जुड़ावन भैया—बड़ा होनहार होगा, पक्का चोर होगा। इसकी आँखें देखो—कैसी बाघ-सी हैं। भैया, अभी से इसे बाहर निकालने लगे। किसी की दीठ लग जायगी।" और वह उसे उछाल-उछालकर कहने लगी—"क्यों रे, पाजी, बदमाश, बड़ा सयाना होगा। क्यों रे मुये !"

कञ्जरों का चौधरी अपनी मचिया पर बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। नारियल एककोने में टिकाकर

वह बच्चे को देखने उठा। समीप पहुँचकर उसने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा—"यह हमारा कुल उजागिर करेगा। देखना, कैसी सफ़ाई से जेब काटेगा। तुम सबों के कन्धे पर लात न रक्खे तो कहना। अच्छा ले जाओ इसे, दे आओ भूखा है।"

"किसे दे आऊँ?"—जुड़ावन आगे बढ़कर बोला, "हरामज़ादी सबेरे ही से लापता है। सब कुछ ले-दे कर गई है।"

"और इसे छोड़ गई है!"

"हाँ!"

"अरे गज़ब! ऐसी हरामज़ादी निकली।"—चौधरी कहने लगा और लगा सिर खुजलाने। पड़ोसी एकत्र होकर जुड़ावन से कहने लगे—"अब क्या करोगे—तुम अपना धन्धा देखोगे या इस पिल्ले को लिए फिरोगे। अच्छा छकाया सुसरी ने तुम्हें, जुड़ावन। बड़ी दग़ाबाज़ निकली उफ़—!"

"अरे हटाओ भी, उसकी चर्चा फ़जूल है। जो ईश्वर की इच्छा होगी, होगा—अब गले पड़े बजाये सिद्ध।"—जुड़ावन ने अपने को समझाया।

बच्चे को लेकर वह गाँव के बाहर की तरफ़ चल पड़ा। उसे ऐसा जान पड़ा मानों लोग उसकी ओर अँगुली उठाकर उसे चिढ़ा रहे हों। बाहर जङ्गल में पहुँचकर वह एक स्थान पर बैठ गया। चारों ओर

सन्नाटा था। वृक्षों की डालियों को हिलाती हुई वायु मानों उसासें भर रही थी। मानों उसी दुख को प्रकट करने के निमित्त वृक्षगण अपनी पीली पत्तियाँ टपका देते थे। दूर पर एक नाला कङ्कड़ों से उलझता हुआ, कराहता हुआ मानों बह रहा था।

जुड़ावन ने शिशु को अपने समीप लिटा दिया। उसने ऐसा अनुभव किया मानों यह उसके सिर का जञ्जाल हो। बच्चा उसे अपनी टिमटिमाती हुई आँखों से देखता हुआ मानों चिन्ता-मग्न अपनी मुट्ठी चूस रहा था। जुड़ावन की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। क्षण भर के लिए उसने सोचा—"यहीं छोड़ दूँ।" फिर वह उस असहाय के प्रति सहानुभूति और करुणा से भर गया। उसके प्रति 'आत्मीयता' ने जुड़ावन के मस्तिष्क से वह विचार निकाल फेंका। उसने बच्चे को गोद में उठा लिया, छाती से चिपकाकर वह उसे ध्यान से देखने लगा। उसे ऐसा जान पड़ा मानों वह उस शिशु में अपना शैशव-रूप देख रहा हो। उसका हृदय अनुराग से भर गया। उसका शरीर रोमञ्चित हो उठा। उसकी आँखें सजल हो गईं।

"बच्चे !"—उसने शिशु को सम्बोधन करके कहा—"तू मेरा बेटा है, मेरी ही भाँति तू भी एक दिन होगा। तू दीवारों पर छिपकली की भाँति चढ़ेगा,

सेंध में साँप की भाँति घुसेगा और कमलनाल की भाँति तू ताले तोड़ेगा। तेरे भी सन्तान होगी और उनकी माँ उन्हें छोड़कर भाग जायेगी। तब क्या तू उन्हें गोद में लेकर दरवाज़े-दरवाज़े भीख माँगता फिरेगा? बोल! क्या करेगा? माँगेगा—क्यों?"

उसने बच्चे को नाले के किनारे डाल दिया और वृक्ष की आड़ में छिपकर देखने लगा कि बच्चा क्या करता है? वह हाथ-पैर फेंकने लगा और मुँह में अँगुलियाँ चूसता हुआ 'मम्-मम्' करने लगा। जुड़ावन उसे वहीं छोड़ धीरे-धीरे आगे बढ़ा और वह ऐसे स्थान पर पहुँच गया, जहाँ से न शिशु दिखाई पड़ता था, न उसकी आवाज़ ही सुनाई पड़ती थी। वह अब भाग खड़ा हुआ, परन्तु उसे भागते हुए भी ऐसा जान पड़ा मानों बच्चे के रोने की आवाज़ उसके कानों में गूँज रही हो।

"कहीं खिसककर नाले में न बह जाय!"—उसे एकाएक ध्यान आया। उसका सिर चकरा गया, उसका दिल कचोटने लगा। परन्तु वह आगे भागता ही चला गया।

एकाएक वह रुक गया। उसने चारों ओर देखा और वह तेज़ी से लौट पड़ा। पास पहुँचकर उसने बच्चे को ज़ोर-ज़ोर से रोते सुना। रुदन से आसपास के वृक्ष-समूह प्रतिध्वनित हो उठे थे। उसने बच्चे को

उठा लिया और उसे छाती से चिपकाये हुए वह जङ्गल के पार वाले गाँव में जा पहुँचा। वहाँ वह दरवाज़े-दरवाज़े फेरी लगाकर लड़खड़ाती हुई वाणी में मांगने लगा—"अनाथ को थोड़ा दूध मिल जाय! भगवान् तुम्हारा भला करेंगे!"*

*Sholom Asch नाम कहानी लेखक की एक कहानी के आधार पर।

मोतीबाई

हम लोग पागलखाने से चलने ही वाले थे कि मेरी दृष्टि आँगन के एक कोने में खड़े एक लंबे-पतले व्यक्ति पर जा पड़ी। वह रह-रहकर किसी काल्पनिक कुत्ते को पुकारने की भावभङ्गी कर रहा था। बड़ी मधुर प्रेममयी वाणी में वह कह रहा था—"मोती, मोती! आ! आ! मेरी मोती—मोती बाई—ई—ई।" और वह अपने पैरों को इस प्रकार पटकता था मानों वह उस पशु का ध्यान आकर्षित कर रहा हो। मैंने डाक्टर से पूछा—"इसे क्या हुआ है?" उसने उत्तर दिया—"अजी, कोई ख़ास बात नहीं है। यह एक कोचवान था जो कुत्ते के पीछे पागल हो गया है। इसका नाम फेकू है।"

मैंने आग्रह किया—"कृपाकर इसका हाल तो सुनाइए। रोज़मर्रा की साधारण घटनाएँ भी कभी-कभी हमारे हृदय पर बड़ा प्रभाव डालती हैं।"

उसके साथी साईस ने उस व्यक्ति की कहानी इस प्रकार सुनाई—

'प्रयाग नगर के बाहरी भाग में मध्यम श्रेणी का एक धनी परिवार रहता है। उनके पास गंगा-तट

पर एक बाग़ और उसमें एक सुन्दर बँगला है। यह फेकू उन्हीं का कोचवान था। यह देहाती लड़का था, गँवार था, पर दिल का साफ़, सीधा-सादा और बुद्धू।

'एक दिन अपने मालिक के घर लौटते समय एक कुत्ता उसके पीछे लगा। पहले उसने कुछ ध्यान न दिया, पर कुत्ते को ठीक अपने पीछे लगे देख वह घूम पड़ा। उसने ग़ौर से देखा। शायद वह कुत्ते को पहचानता हो। पर नहीं, कुत्ता परिचित न था।

'वह कुत्ता इतना दुबला था कि उसे देखकर डर लगता था। उसके थन बहुत नीचे लटक रहे थे। वह कुतिया थी। कुतिया उसके पीछे चली आ रही थी। उसकी आँखों से दीनता और विषाद टपक रहा था। वह टाँगों के बीच दुम दबाये, कान सिकोड़े उसके पीछे चली आ रही थी। जब वह रुकता, वह रुक जाती। जब वह चलता, वह पीछे हो लेती।

'फेकू ने पहले उसको भगा देना चाहा। 'दुत, दुत, दु...त!' उसने कहा। वह दो-चार क़दम लौट पड़ी। फिर बैठकर प्रतीक्षा करने लगी और जब वह कोचवान चलने लगा, कुतिया फिर उसके पीछे लग गई।

'उसने झुककर ढेला उठाने का उपक्रम किया। कुतिया अपने थन लदफदाती हुई थोड़ी दूर भाग

गई। परन्तु ज्यों ही फिर कोचवान लौटा, वह भी लौट पड़ी और लगी पीछे-पीछे चलने।

अब फेकू को उस पर दया आ गई। उसने उसे पुकारा। डरती हुई वह उसके पास पहुँची। उसकी पीठ झुककर कमान हो रही थी। उसकी पसलियाँ चमड़े के भीतर गिनी जा सकती थीं। कोचवान ने उसकी ठठरी को थपथपाया और उसकी हीन दशा पर दुखी होकर कहा—"अच्छा, आ, आ, आ!" उसने दुम हिलाई। वह समझ गई कि उसका स्वागत हुआ है; वह शरण में ले ली गई है। नये मालिक के पैरों के पास न रुक कर अब वह उसके आगे-आगे दौड़ने लगी।

फेकू ने उसे अस्तबल में पुआल पर स्थान दिया और रसोई में उसके लिए रोटी ढँढ़ने चला। जब वह भरपेट खा चुकी, वह जा कर सो गई—गुमटिया कर।

दूसरे दिन कोचवान ने अपने मालिक से उसका ज़िक्र किया। मालिक ने कुतिया को पड़े रहने की अनुमति दे दी। वह अच्छी कुतिया थी—समझदार और वफ़ादार।

परन्तु शीघ्र ही लोगों ने उसमें एक भयानक दोष देखा। वह साल के एक सिरे से दूसरे सिर तक प्रेम की पीड़ा से पीड़ित रहती। थोड़े ही दिनों में

उसने आस-पास के सभी कुत्तों से परिचय प्राप्त कर लिया। सब उसके आवास के चारों ओर रात-दिन चक्कर काटा करते। वेश्याओं की भाँति निर्लिप्त भाव से वह सबकी खातिर करती। सभी से प्रेम जतलाती। फलतः कुक्कुर-वंश के सभी छोटे-बड़े, दुबले-पतले, भूरे-काले, चितकबरे, बूंचे-दुमवाले, भाँति-भाँति के कितने, झुंड-के-झुंड उसके पीछे लगे रहते। वह उन्हें लेकर, सड़क को छोड़कर, गलियों की सैर करती। जब वह साये में ठहरकर सुस्ताने लगती तब उसके प्रेमी उसे चारों ओर से घेरकर खड़े हो जाते और अपनी जीभ लटकाकर उसकी ओर टकटकी लगाए रहते।

मोहल्ले के लोग इस कुतिया को विचित्र वस्तु समझते थे। ऐसी कुतिया उन्होंने कभी देखी-सुनी नहीं थी। पशु-चिकित्सकों के लिए भी वह एक पहेली थी।

जब वह शाम को अस्तबल को लौटती, कुत्तों का जत्था उसके घर को घेर लेता। उन सबने बगीचे की बाड़ के प्रत्येक छेद से अपना रास्ता बनाया, क्यारियों को तहस-नहस कर डाला, गमले गिरा कर तोड़ डाले, फूलों की जड़ में गड्ढे बना डाले, और माली की नाक में दम कर डाला। वे रात भर चिल्लाते-रोते और अपनी प्रियतमा के आवास

के चारों ओर चक्कर काटते। कोई उपाय उन्हें भगाने में कारगर न होता था। दिन में तो वे घर में घुस जाते। कुछ पूछिए नहीं, बस आफ़त थी, नाक में दम था, लाइलाज बला थी।

जहाँ देखिए, जब देखिए, कोई-न-कोई कुत्ते के साहबज़ादे सामने हाज़िर हैं। कोई सीढ़ी से उतर रहा है तो उसे आधे रास्ते चढ़ते हुए कोई भैरव का वाहन मिल जाता। बैठक में दो-एक काले-गोरे चौकी के नीचे छिपे रहते। रसोई में प्रवेश करने की घात में कोई ताक लगाये बैठा रहता। सारांश यह कि बस आफ़त थी आफ़त। औरतें चीख़ पड़तीं। लड़के उनके डर के मारे गिरकर अपना हाथ-पैर तोड़ बैठते।

आस-पास के मोहल्लों, बस्तियों से, और जाने कहाँ-कहाँ से ये कुत्ते बराबर आते रहते, दो-एक दिन ठहरते, जाने क्या खा-पीकर रहते और फिर ग़ायब हो जाते।

जो कुछ भी हो, पर फेकू अपनी कुतिया को मानता था। वह उसे मोतीबाई कहकर पुकारता—वह प्यार करने की योग्य भी थी। फेकू बार-बार उसके बारे में कहता—"कुत्ते भी जीव हैं। वे भी प्राणी हैं। बोलते भर नहीं।"

फेकू ने उसके लिए एक पट्टा बनवा दिया—लाल

चमड़े का—उस पर पीतल का पत्तर जड़ा था। उसने उस पर लिखवाया था—"मोतीबाई, मालिक फेकू कोचवान।"

मोती मोटी हो गई। वह उतनी ही मोटी दीख पड़ती थी, जितनी वह पहले दुबली थी। उसका शरीर फूल गया। उसके थन नीचे लटकने लगे। उसे चलने में कठिनाई होने लगी। उसके पंजे उसके शरीर के बोझ से नीचे फैल जाते। यदि दौड़ने का प्रयत्न करती तो जल्दी ही वह थककर बैठ जाती।

उसमें एक और विचित्र बात देखने में आती थी। साल में चार बार वह बच्चे देती—ढेर-के-ढेर और रंग-विरंग के। फेकू उनमें से एक को चुनकर दूध पीने को रहने देता और शेष को अपने कम्बल में छिपा कर गंगा में फेंक आता। उसे किसी प्रकार का संकोच न होता और न दया ही आती।

माली पहले से ही शिकायत किया करता था। अब रसोइया भी उसका साथ देने लगा। उसकी रसोई में कुत्ते घुसने लगे। कोई कुछ उठा ले जाता था, कोई कुछ। जिसे जो कुछ मिलता, आँख बचा-कर उठाकर चलता बनता।

फेकू के मालिक अब बरदाश्त न कर सके। उन्होंने आज्ञा दी कि मोती को तुरन्त देश-निकाला दो। फेकू बड़ी परेशानी में पड़ा। वह उपाय सोचने

लगा। सोचा, किसी को दे आऊँ। पर कोई उसे रखने को तैयार न होता। उसने सोचा, ले जाकर कहीं छोड़ आऊँ। संयोग से एक लारीवाला उसका दोस्त था। उसके कहने पर वह मोती को लारी पर चढ़ाकर शहर के बाहर दूर छोड़ आया। संध्या होते होते मोती अपने मकान पर लौट आई!

अब कुछ और उपाय सोचना पड़ा। फेकू ने पैसे ख़र्च कर उसे एक मित्र के हाथ रेल पर दूर भेजा। उस बेचारे ने ले जाकर उसे फ़तहपुर में छोड़ दिया।

तीन दिन बाद देखा गया तो मोतीबाई अपने अस्तबल में हाज़िर हैं।

अब मालिक को भी दया आ गई। उसने उसे निकालने पर अधिक आग्रह न किया।

मोतीबाई के मित्रवर्ग अब फिर रोज़ आने-जाने लगे। उनकी संख्या भी बढ़ गई। उनकी शोख़ी भी बढ़ गई। एक दिन मालिक के यहाँ मित्रों की दावत थी। मोतीबाई के किसी मनचले मित्र ने मुर्ग़ मुसल्लम पर छापा मारा और लेकर चम्पत हुआ। रसोइये की हिम्मत न पड़ी कि उसका सामना करे।

अब मालिक माफ़ न कर सके। उन्होंने तुरन्त फेकू को बुलाकर क्रोध से कहा—"देखो अगर सबेरा होने के पहले तुम इस कुतिया को गंगा में नहीं सेरवा (फेंक) आये तो अपना जवाब समझना। सुना!"

फेकू पर मानों वज्र गिर पड़ा। उसने अपनी नौकरी छोड़ देने का निश्चय किया। वह अपनी कोठरी में पहुँच अपना असबाब समेटने लगा, फिर उसे ध्यान हुआ—"इस कुतिया को लेकर मैं कहाँ रहने पाऊँगा। यहाँ का पुराना नौकर हूँ। कपड़ा मिलता है, अमीर घराना है, अच्छे लोग हैं, एक कुतिया के लिए सब कुछ त्याग देना उचित नहीं।" उसे अपने स्वार्थ का ध्यान हो उठा। उसने कुतिया से ही पिंड छुड़ाने का निश्चय किया।

उसे रात भर नींद नहीं आई। बड़े तड़के वह उठ बैठा, एक मज़बूत रस्सी ली और कुतिया को ढूँढ़ने चला। वह धीरे से पुआल के बिस्तर से उठी, कान फटफटाये, अँगड़ाई ली और अपने मालिक के पास आ पहुँची। फेकू की हिम्मत टूट गई। वह उसे प्रेम से थपथपाने लगा और लगा उसके शरीर पर हाथ फेरने। उसका सिर अपनी गोद में लेकर वह उसे प्रेम से पुचकारने और दुलारने लगा। वह अगले पैरों को उठाकर उसका मुँह चाटने का प्रयत्न करने लगी। उसकी दुम मोरछल की भाँति हिल रही थी।

सबेरे का गोला गरज गया। अब वह देर नहीं कर सकता था। उसने द्वार खोला। 'मोती! मोती!' उसने पुकारा। कुतिया दुम हिलाने लगी। उसने समझा मानों उसे बाहर चलना है।

वे दोनों नदी-तट पर पहुँचे। फेकू ने एक स्थान निश्चय किया—जहाँ पानी गहरा था। उसने रस्सी का एक सिरा मोती के सुन्दर पट्टे से बाँधा, दूसरा एक भारी पत्थर के ढोंके से। उसने मोती को गोद में उठा लिया और उसे ज़ोर से चूमने लगा, मानों वह किसी आत्मीय से बिदाई ले रहा हो। उसका गला उसने ज़ोर से पकड़ लिया और उसे 'मोती! मेरी मोती!' कहकर दुलारने लगा। मोतीबाई हर्ष से गुर्रा रही थी। उसके आनन्द का अन्त नहीं था।

फेकू ने कई बार उसे पानी में फेंकने का प्रयत्न किया, पर उसका साहस साथ न देता था।

उसने एकाएक निश्चय किया और अपनी सारी शक्ति लगाकर उसने उसे दूर पानी में फेंक दिया। कुतिया ने तैरना चाहा, पर उसका सिर पत्थर के बोझ से रह-रहकर पानी में डूब जाता। उसने मालिक की ओर निराशा भरी कातर दृष्टि से देखा, मानों कोई डूबता हुआ व्यक्ति तट पर खड़े हुए किसी व्यक्ति को देख रहा हो। वह प्राणों के लिए लड़ रही थी। उसका अगला भाग पानी के भीतर था, पिछली टाँगें पानी पर फटफटा रही थीं। थोड़ी देर तक वे दिखाई पड़ीं और फिर वे भी डूब गयीं।

पाँच मिनट तक पानी के तल पर बुलबुले

दिखाइ पड़े, मानों नदी उबल रही थी। फेकू घबराया हुआ, हतबुद्धि खड़ा था। उसका दिल ज़ोरों से धड़क रहा था। उसकी आँखों के सामने मानों मोती अभी तक छटपटा रही थी। उसने गँवारों की भाँति कहा—'वह अपने मन में क्या सोचती होगी ? हा ! बेचारी मोती।'

कोचवान अपने होश-हवास खो बैठा। महीने भर तक वह चारपाई से लगा रहा। नित्य रात्रि में वह मोती कुतिया का स्वप्न देखता। उसे जान पड़ता मानों मोती उसका हाथ चाट रही है। उसके भूँकने के शब्द मानों उसके कानों में पड़ रहे हों।

लोगों ने डाक्टर को बुलाया। कुछ दिनों में वह अच्छा हो गया। उसका मालिक उसे अपने इलाक़े पर ले गया। यह प्रयाग के आगे दूर गंगा तट पर था।

फेकू वहाँ गंगा नहाने जाता। नित्य सबेरे वह अपने साथी मैकू साईस को लेकर तट पर पहुँचता, नहाता और ख़ूब तैरा करता।

एक दिन वे पानी में अठखेलियाँ कर रहे थे। एकाएक फेकू चिल्ला उठा—"देख वे क्या बहा चला आ रहा है। तेरे खाने भर को है।"

एक भारी फूली हुई, बालरहित, लाश बहती चली आ रही थी। उसके पंजे आसमान की ओर

उठे हुए थे। फेकू उसके समीप पहुँचा। मज़ाक में उसने कहा—"तेरी क़सम मैकू...बड़ी भारी है। बड़ा शिकार हाथ लगा। ले चल, भर पेट खाना।" और वह लाश के चारों ओर तैरने लगा।

एकाएक वह चुप हो गया। आँखें फाड़कर वह लाश को देखने लगा। अब वह उसके समीप पहुँचा जैसे उसे पकड़ना चाहता हो। उसने ग़ौर से उस लाश के गले के पट्टे को देखा। फिर उसे अपने समीप खींच कर, उस पर लिखा हुआ वह कुछ पढ़ने लगा। पीतल की चद्दर पर लिखा था—'मोतीबाई मालिक फेकू कोचवान।'

मोती मरने के पश्चात् भी अपने मालिक से मिली थी—और अपने प्रयाग वाले मकान से बीसों कोस की दूरी पर!

फेकू एकाएक ज़ोर से चिल्लाने लगा। उसकी आवाज़ भयातुर थी। वह तट की ओर बड़ी तेज़ी से तैर रहा था, मानों कोई घड़ियाल उसका पीछा कर रहा हो। वह तट पर पहुँच और पानी से निकलकर बेतहाशा भागा—गीले कपड़े पहने, कीचड़ में लथपथ!

वह पागल हो गया था।❀

❀मोपासाँ की एक कहानी के आधार पर।

माँ

माँ अपने बच्चे के पास बैठी थी। वह बहुत उदास थी। उसका बच्चा मौत के मुख में पड़ा था। उसका भोला-भाला मुखड़ा पीला पड़ रहा था। उसकी आँखें मुँद रही थीं। बच्चे की साँस भारी पड़ रही थी। जब कभी वह लम्बी साँस लेता, जैसे कराह रहा हो, तो माँ की दशा और दयनीय हो जाती और वह उस बच्चे के लिए और भी चिन्तित हो उठती थी। इसी बीच दरवाज़े से किसी के आने की आहट हुई। एक दरिद्र बूढ़ा घर के भीतर आ पहुँचा। सर्दी से बचने के लिए उसने फटी कमली भली-भाँति अपने शरीर पर लपेट रखी थी। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। बाहर पृथ्वी बरफ से से ढँक रही थी। वायु तीखी और सन्नाटे से बह रही थी।

बूढ़ा सर्दी से काँप रहा था। बच्चा क्षण भर के लिए शान्त हो गया था। माँ ने उठकर बूढ़े के लिए चाय की केतली आग पर रख दी। बूढ़ा बच्चे के पास जा बैठा और पालने को झुलाने लगा। माँ

पास की टूटी मचिया पर बैठ गई और अपने बीमार बच्चे को देखने लगी। बच्चे की साँस चल रही थी। बीच-बीच में वह कष्ट से कराह उठता था। माँ ने शिशु का रक्तहीन हाथ अपने हाथों में लेकर बूढ़े से पूछा—"बाबा ! हमारा लाल हमें धोका तो न देगा—परमात्मा मेरी गोद तो सूनी न करेगा ?"

उस बूढ़े ने, वह यम था, इस प्रकार सिर हिला दिया जिसका अर्थ 'हाँ' और 'न' दोनों हो सकता था। माता सिर थामकर बैठ गई, उसकी आँखों से मोती कपोलों पर ढुलकने लगे। उसका सर चकराने लगा, तीन रात उसने आँखों में बितायी थीं। उसकी आँखें लग गईं, केवल क्षण भर के लिए। फिर वह चौंककर उठ बैठी और सर्दी से काँपने लगी।

"ऐं !" उसने चारों तरफ़ आँखें फाड़कर देखा। न कहीं बूढ़ा दिखाई पड़ा और न कहीं उसका बच्चा ! दोनों वहाँ नहीं थे। कोने में जो दीपक टिमटिमा रहा था वह भी बुझ चुका था।

माँ रोती, छाती पीटती बाहर दौड़ी। बाहर बरफ़ से ढँकी हुई भूमि पर काले वस्त्रों में लिपटी एक स्त्री बैठ थी। उसने कहा—"तेरे घर में अभी यम धँसा था। मैंने उसे तेरे बच्चे को लेकर निकलते

देखा है। उसकी चाल हवा से भी तेज़ है। वह चुराई हुई चीज़ कभी लौटाता नहीं।"

"वह किधर गया है?"—माँ ने पूछा—"सिर्फ़ इतना बता दो। मैं उसका पीछा न छोड़ूँगी।"

"मैं बतला तो सकती हूँ"—काले कपड़ोंवाली औरत ने कहा—"पर मैं ऐसे थोड़े ही बतलाऊँगी! पहले मुझे वे सब लोरियाँ सुना दो जो तुम अपने बच्चे को सुनाया करती थीं। मुझे वे लोरियाँ पसन्द हैं। मैं निशा हूँ। मैंने लोरियाँ सुनीं हैं, तुम्हारी आँखों से आँसू बहते देखे हैं।"

माँ ने आतुरता से उत्तर दिया—"मैं सब सुनाती हूँ, सुनो, विलम्ब न करो। मुझे अपने लाल के लिए उसका पीछा करना है।"

पर रात्रि मूक पाषाण की तरह बैठी रही। माँ ने लाचार होकर उसे लोरियाँ सुनाईं, आँखों से आँसू बरसाये। जितना ही वह गाती थी, उतना ही अधिक वह रोती थी। तब रात्रि ने कहा—"दाहिनी तरफ़ के जंगल के देवदारु बन में चली जाना। मैंने उसी ओर तुम्हारे बच्चे को लिये हुए उसे जाते देखा है।"

बन के भीतर एक चौरस्ता मिला। बेचारी माँ किस ओर जाय? वहीं एक कँटीली झाड़ खड़ी थी। उसमें न फूल थे न पत्तियाँ। हेमन्त के कारण वह

ठूँठ हो रही थी। उसकी टहनियों से हिमकण चिपक रहे थे।

माँ ने पूछा—"झाड़! तुमने यम को इधर से मेरे बच्चे को लेकर जाते हुए देखा तो नहीं?"

"हाँ"—कँटीली झाड़ ने उत्तर दिया—"पर मैं तभी पता बतलाऊँगी जब तुम मुझे अपनी अँकवार में लेकर गरमा दोगी। मैं सर्दी से मर रही हूँ—मेरे अंग बरफ़ हो रहे हैं।"

माँ ने विवश होकर उस कँटीली झाड़ को हृदय से लगा लिया। उसका वक्षस्थल काँटों से क्षत-विक्षत हो गया। रक्त की बूँदे टपकने लगीं। सूखी झाड़ लहलहा उठी। काली रात में उसके फूल महकने लगे—माता का हृदय ऐसा ही होता है।

कँटीली झाड़ ने तब माँ को रास्ता बतला दिया।

जाते-जाते वह एक सरोवर के तट पर जा पहुँची। उस पर न कहीं नाव थी, न पुल। वह कैसे पार पहुँचे? उसे तो अपने बच्चे की खोज में जाना ही था। विवश होकर माँ ने सवोवर का पानी पीकर उसे सुखा देना चाहा। यह व्यर्थ का प्रयत्न था। पर दुखी माँ भला इसका कहाँ ध्यान रख सकती थी। उसकी दशा पर दयालु होकर सरोवर ने कहा—"तुम्हारा परिश्रम सफल नहीं होने का। मैं एक

उपाय बतलाता हूँ। मुझे मोती बहुत पसन्द हैं। और तुम्हारी आँखों के मोती बड़े क़ीमती होंगे। अगर तुम रोकर मोती के ढेर लगा दो तो मैं तुम्हें पार पहुँचा दूँ और तुम आसानी से यम की फुलवारी में पहुँच जाओगे। उसी में वह मनुष्यों के प्राणों के पेड़-पौधे लगाता रहता है। वहाँ का हर एक बिरवा मनुष्य का प्राण है।"

"अपने लाल के लिए क्या मैं कुछ उठा रखूँगी!"—दुखी माँ ने उत्तर दिया। वह रो-रोकर आँसुओं के मोती बरसाने लगी। रोते-रोते उसकी आंखें भी बह कर सरोवर में जा गिरीं। वे दोनों दो बहुमूल्य मोती बन कर सरोवर के जल में छिप गईं। सरोवर ने माता को उठाकर उस पार पहुँचा दिया। उस पार यम की वाटिका और ज़खीरों की श्रेणी बहुत दूर तक फैली हुई थी। अन्धी माँ उसमें भटकने लगी।

वह पुकारने लगी—"मेरे बच्चे को यम किधर ले गया? हाय! मैं किधर जाऊँ!"

एक बूढ़ी स्त्री ने यह सुनकर उत्तर दिया—"यम अभी यहाँ नहीं आया।"

यह सन से सफ़ेद बालों वाली बुढ़िया यम की वाटिका की देख-रेख करती थी। उसने माँ से पूछा—"तुम यहाँ कैसे पहुँची?"

"भगवान ने मेरी सहायता की है।"—माँ ने उत्तर दिया—"वह करुणा-सागर है। तुम भी मुझ पर दया करो। कृपा कर बतला दो मेरा लाल कहाँ मिलेगा ?"

"मैं क्या जानूँ ?" उस बुढ़िया ने कहा, "क्या तुम उसे पा सकती हो, कितने पेड़-पौधे आज सूख गये हैं। यम आज उनकी जगह पर दूसरे रोपेंगे। तुम्हें मालूम ही है, हर आदमी के प्राण का बिरवा होता है। देखने में वह वनस्पति-सा होता है पर उसमें जीव होता है। बस समझ लो, बच्चों के जीव का भी पौधा होगा पर तुम उसे कैसे पहचानोगी ? मुझे क्या दोगी अगर मैं बतला दूँ ?"

"मेरे पास क्या है ?"—माँ ने कातर होकर कहा—"मैं तुम्हारी जन्म भर की चेरी हो जाऊँगी।"

"मुझे चेरी का क्या काम ?" उस बुढ़िया ने कहा, "तुम मुझे अपने काले केश दे सकोगी ? तुम्हारे केश बड़े सुन्दर हैं। मुझे ये बहुत प्यारे लगते हैं। उसके बदले तुम मेरे सफ़ेद लट चाहो तो ले सकती हो ?"

"यह कौन बड़ी चीज़ है ?" माँ ने प्रसन्न होकर कहा, "तुम ख़ुशी से मेरे सारे काले केश ले लो।"

बुढ़िया ने काले केश के बदले माँ को अपने सफ़ेद बाल दे दिये।

दोनों यम की वाटिका में पहुँचीं, जहाँ पेड़-पौधे आपस में पचमेल हो रहे थे। कहीं कोई विटप खिल रहा था, कहीं कोई कोमल लता मुर्झा रही थी। पेड़-पौधों के उस असंख्य समुदाय में वह अंधी माँ अपने बच्चे को ढूँढ़ने लगी। वह प्रत्येक कोमल पौधे के पास कान ले जाकर उसके हृदय का धड़कना सुनती और अपने बच्चे को पहचानने का प्रयत्न करती। अन्त में उसने लाखों में से अपने बच्चे को ढूँढ़ निकाला।

"यही है मेरा लाल!"—उसने पहचानकर कहा और उसने एक कोमल फूल के पौधे पर अपनी भुजाएँ फैला दीं। कोमल पौधा मुर्झाकर पीला पड़ रहा था।

बूढ़ी औरत ने कहा—"उसे छूना मत! तुम चाहो तो उसके पास बैठी रहो और जब यम आयें तो उन्हें उखाड़ने से मना करना। यदि वे न माने तो तुम कहना कि इसी तरह मैं तुम्हारे अन्य पौधे भी उखाड़ फेकूँगी। यम के आने में अब अधिक विलम्ब नहीं है। तुम्हारी इस धमकी पर वे डर जायेंगे, क्योंकि ईश्वर की आज्ञा के बिना वे एक भी पौधा नहीं उखाड़ सकते।"

इसी बीच ठण्डी हवा का एक झोंका आया। अन्धी माँ ने समझ लिया कि यम आ रहे हैं।

"तुम यहाँ कैसे आ पहुँची ?"—यम ने पूछा—"मुझ से पहले तुम यहाँ कैसे पहुँच गईं ?"

"मैं माँ हूँ !"—उस अन्धी ने उत्तर दिया।

यम ने उस कोमल पौधे को उखाड़ने के लिए हाथ बढ़ाया; परन्तु माँ ने उसे अच्छी तरह से ढँक रक्खा था। वह फिर भी डर रही थी कि कहीं यम उस कोमल बीरवे का कोई अङ्ग न छू दे। लाचार होकर यम ने उसकी भुजाओं पर फूंक मारी। उसकी फूंक ठण्डी-से-ठण्डी हवा के झोंके को भी मात करने वाली थी। माँ की भुजाएँ शिथिल होकर लटक गईं।

यम ने समझाया—"तुम्हारा प्रयत्न बेकार है। मैं ईश्वर का चाकर हूँ। उसकी आज्ञा से मैं उसके पेड़-पौधों को, उसके नन्दन वन में रोपने ले जाता हूँ। उसके बाद उनकी क्या दशा होती है, मैं कुछ नहीं बता सकता।"

"मेरे लाल को मुझे वापस कर दो।"—माँ ने गिड़गिड़ाकर कहा। उसकी आँखों से आँसू बरसने लगे। हताश होकर उसने दो सुन्दर कोमल पुष्प-विटपों को पकड़ लिया और यम से चिल्लाकर कहने लगी—"यदि मुझे निराश करोगे तो मैं तुम्हारे सारे विटपों को नष्ट कर दूँगी।"

"हाँ ! हाँ ! उन्हें मत छूना !"—यम ने घबराकर कहा—"तुम कहती हो, तुम बहुत दुःखी हो और

तुम अपनी तरह दो माताओं की भी दशा करना चाहती हो ?"

दो माताओं की, अपनी तरह—क्या कहते हो !"—उस दुखिया ने आश्चर्य से पूछा। और उसने उन कोमल वृक्षों से अपने हाथ हटा लिये।

"ये लो अपनी आँखें !"—यम ने उसे उसकी खोई हुई आँखें लौटाते हुए कहा—"इन्हें मैंने सरोवर में पाई थीं। मुझे क्या पता था कि ये तुम्हारी थीं। इन्हें उनके स्थान में रख लो। अब ये निर्मल हो गई हैं। चलो अब पास के कुएँ में देखो। मैं तुम्हें उन दोनों फूलों के नाम बतलाता हूँ। तब तुम्हें पता चलेगा कि तुम कितना भारी अनर्थ करने जा रही थी।"

माँ ने जाकर कुएँ के भीतर झाँका। उसने देखा कि एक फूल विश्व की विभूति बन रहा था और दूसरा दुःख, दारिद्रय और दीनता का आगार था !

"दोनों परमात्मा की इच्छा है।"—यम ने समझाया।

"इनमें कौन दुःख और कौन सुख का वृक्ष है ?"—माँ ने पूछा।

"यह मैं नहीं बतला सकता,"—यम ने उत्तर दिया, "परन्तु यह कह सकता हूँ कि इनमें एक की दशा तुम्हारे बच्चे की सी है। यह तुम्हारे बच्चे का भाग्य था कि तुम पर उसके भविष्य का भार पड़ा था।"

यह सुनकर माँ भय से काँप उठी—"मेरे बच्चे के भाग्य में क्या है ? मुझे बतला दो। उस अजान शिशु को मुक्त कर दो! मेरे बच्चे को दुख से छुटकारा दो! चाहे उसे मुझ से दूर ही क्यों न ले जाओ! जाओ—ले जाओ! उसे परमात्मा की शरण में—उसके नन्दन वन में! तनिक परवा न करो मेरे आँसुओं की—मेरी विनती की—मेरे अच्छे-बुरे कर्मों की!"

"भोली स्त्री! क्या कहती है?"—यम ने पूछा—"क्या तू अपने बच्चे को लौटा ले जाना चाहती है या मैं उसे उस लोक में ले जाऊँ जिसके विषय में तू कुछ नहीं जान सकती?"

यह सुन कर माता ने मस्तक नीचे कर लिया और वह हाथ जोड़ कर ईश्वर से विनती करने लगी—

"प्रभो! तेरी इच्छा के विरुद्ध यदि मैं विनती करूँ तो उस पर ध्यान न देना। करुणामय! तेरी इच्छा में ही हमारा कल्याण है। प्रभो! मुझे क्षमा करना।"—और वह परमात्मा के ध्यान में बेसुध हो गई।

यम उसके बच्चे को लेकर उस अज्ञात लोक की ओर चल पड़ा!❀

❀डेन्मार्क निवासी—हेन्स क्रिश्चियन अण्डरसन की आख्यायिका का रूपान्तर।

खैरा कुत्ता

लड़का मोड़ पर खड़ा था। वह कटघरे से टिका हुआ लापरवाही से पैर हिला-हिलाकर कंकड़ियों से फुटबाल खेल रहा था। सूर्य की किरणें पटरी की चिकनी पथरीली फर्श पर पड़ रही थीं। ग्रीष्म की मन्द वायु छाया में धूल से खेल रही थी। लदी-फँदी गाड़ियाँ धीरे-धीरे अपना रास्ता लेती थीं—खड़खड़ाती हुई। बालक मानों निर्विचार इधर-उधर दृष्टिपात कर रहा था।

कुछ देर बाद एक छोटा खैरे रङ्ग का कुत्ता पटरी से भागता हुआ आता दिखाई पड़ा। वह किसी को ढूँढ़ रहा था। उसके गले से एक छोटी रस्सी घिसट रही थी। कभी-कभी उसका पैर रस्सी पर पड़ जाता और वह ठोकर खाकर गिर पड़ता।

वह लड़के के सामने जाकर खड़ा हो गया। दोनों ने एक-दूसरे को देखा! कुत्ता पहले हिचका, फिर उसने अपनी छोटी दुम हिलाकर मानों परिचय प्राप्त करना चाहा। लड़के ने अपने हाथों से इशारा किया। बड़े विनीत भाव से कुत्ता आगे बढ़ा। दोनों ने एक-दूसरे

का प्रेम से स्वागत किया—एक ने थपथपाकर; दूसरे ने दुम हिलाकर।

कुत्ते का साहस बढ़ा तथा वह प्रेम और प्रसन्नता के आवेश में लड़के को गिराने का प्रयत्न करने लगा। लड़के ने इस पर उसके सिर पर एक चपत जड़ दी।

इस हरकत से मानों वह डर गया—उसे आश्चर्य भी हुआ हो; और संभव है उसके हृदय को आघात भी पहुँचा हो। वह निराशा में लड़के के पैरों के पास दुबक गया। पर जब लड़के ने अपनी तुतली भाषा में डाँटते हुए उसे बार-बार चपतियाया तो वह उतान हो गया और उसने अपने पंजे विचित्र प्रकार से सिकोड़ लिये। अपने कानों और आँखों की सहायता से उसने उस बालक से मानों विनती की—छोटी-मोटी विनती।

वह इस अवस्था में ऐसा खिलाड़ी लगता था कि लड़का बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने उसे उसी मुद्रा में रखने के लिए बार-बार हलके से थपथपाया, परन्तु उस छोटे खैरे कुत्ते ने समझा कि यह उसके किसी घोर अशिष्ट आचरण का दण्ड है। वह अपने अपराध के प्रतीकार में सिमट गया, मानों वह अपनी शक्ति भर प्रायश्चित्त करने का भाव-प्रदर्शन

कर रहा हो। उसने इस प्रकार उस बालक की बड़ी विनती की।

आखिर वह बालक इस तमाशे से थक गया। वह घर की ओर लौटा। कुत्ता अभी तक मानों क्षमा-प्रार्थना कर रहा था। वह उतान पड़ा था। उसने बालक की लौटते समय की आकृति की ओर आँखें फेरीं।

वह तुरंत हड़बड़ाकर उठा और लड़के के पीछे-पीछे चला। लड़का मटरगश्ती करता हुआ घर की ओर जा रहा था—बीच-बीच में रुकता, हर चीज़ को देखता-भालता जाता था। इसी तरह इधर-उधर देखती हुई उसकी आँखों ने अपने पीछे आते हुए उस कुत्ते को देखा। वह राही की भाँति उसके पीछे आ रहा था।

लड़के ने रास्ते में पड़ी एक छड़ी से उसे मारना आरम्भ किया। कुत्ता लौट गया और उस समय तक उसकी चिरौरी करता रहा जब तक उस बालक के छोटे-छोटे हाथ मारते-मारते थक न गये। और वह उसे छोड़कर आगे न बढ़ा। फिर वह उछलकर कूदता हुआ उसके पीछे चला।

मार्ग में लड़के ने कई बार मुड़कर कुत्ते की मरम्मत की, और उसकी बाल-चेष्टाओं से जान पड़ता था कि वह उस कुत्ते को घृणास्पद, निकम्मा

और बहेतू समझता है। बस, क्षण भर उससे कोई जी बहला ले, इसके अतिरिक्त उस बालक के हृदय में इस कुत्ते का और कोई उपयोग न था। कुत्ता अपने अवगुण और पशुत्व पर क्षमाप्रार्थी था और उसने अपनी मूक भाषा में उसके लिए अत्यन्त खेद प्रकट किया। परन्तु उसने चुपके-चुपके उसका पीछा करना न छोड़ा। उसकी नीयत ऐसी बद हो गई थी कि वह हत्यारे की तरह उसके पीछे लग गया।

बालक जब अपने घर के जीने तक पहूँचा तो कुत्ता उससे कुछ दूर पर पोई भरता आ रहा था। लड़के का रुकना देखकर वह संभवतः लज्जा से ऐसा घबरा गया कि उसे अपने गले की रस्सी की सुध न रही। उसके पैर उस पर पड़ गये और वह ठोकर खाकर मुँह के बल गिर पड़ा।

लड़का द्वार की सीढ़ी पर बैठ गया। दोनों से फिर मेल-मिलाप हुआ। इस बीच कुत्ते ने बालक को प्रसन्न करने की बड़ी चेष्टा की। उसने दो एक ऐसे खेल दिखाये कि लड़के ने एकाएक समझ लिया कि यह है किसी काम का जानवर। उसने दौड़कर इसकी रस्सी पकड़ ली।

वह उसे घसीटता हुआ आँगन और फिर घूमती-फिरती सीढ़ियों से होकर अंधेरे घर की ओर ले चला। कुत्ते ने बड़ा प्रयत्न किया परन्तु वह

आसानी से सीढ़ियों पर नहीं चढ़ पाता था। वह बहुत छोटा और कमज़ोर था। लड़का इतनी तेज़ी से चढ़ रहा था कि कुत्ता भयभीत हो उठा। उसे ऐसा जान पड़ा मानों वह किसी भयानक अज्ञात लोक की ओर खिंचा जा रहा है। उसकी आँखें भय से चमकने लगीं। वह छटपटाने लगा और वह उस बालक के पैरों से उलझने लगा।

बालक और भी यत्न करने लगा। ज़ीने पर दोनों में खींचातानी आरंभ हुई। अन्त में बालक विजयी हुआ। वह अपनी धुन में था—कुत्ते की उसके सामने बिसात ही क्या थी। वह उसे घसीटता हुआ अपने घर में दाखिल हुआ—उसके चेहरे पर विजयी का गर्व खेल रहा था।

कोई भीतर न था। लड़का फर्श पर बैठ कुत्ते को छेड़ने लगा। उसने तुरंत उसकी मंशा समझ ली। वह अपने नये दोस्त पर प्रेम की बौछार करने लगा। थोड़ी ही देर में दोनों एक दूसरे के सच्चे साथी हो गये।

बालक के घरवाले आये तो बड़ा शोर-गुल मचा। कुत्ते की परीक्षा हुई—उस पर आलोचना हुई। लोगों ने उसके तरह-तरह के नाम रखे। सभी की आँखों में उसके प्रति घृणा के भाव थे। वह घबरा कर सूखी लता की भाँति भूमि पर लोट गया,

परन्तु लड़के ने उसके पास पहुंच कर, चिल्लाकर उसका पक्ष समर्थन करना आरंभ किया। वह अपने दोनों हाथों से कुत्ते की गर्दन पकड़ चिल्ला ही रहा था कि उसका पिता अपने काम पर से घर लौटा।

पिता ने पहुँचते ही पूछा लड़के को कौन रुला रहा है। लोगों ने ख़ूब बढ़ा-चढ़ाकर उसे समझाया कि दुष्ट लड़का एक अज्ञातकुलशील बाज़ारू कुत्ते को घर में रखना चाहता है।

घर के लोग कॉंफ्रेंस करने बैठे। इस कॉंफ्रेंस के निर्णय पर कुत्ते का भविष्य निर्भर था। पर उसे उसकी चिन्ता न थी। वह आनन्द से लड़के का लटकता हुआ कुर्ता चबा रहा था।

जल्दी ही सारा मामला तय हो गया। उस दिन किसी कारण पिता संध्या समय घर कुछ भिन्नाया हुआ लौटा था। उसने झल्लाहट में किसी की परवा न कर कुत्ते को पड़ा रहने की आज्ञा दे दी। लड़का सिसकता हुआ कुत्ते को लेकर नीचे किसी कोठरी में उसे ठहराने गया। उधर पिता ने बड़ी बहादुरी से उसकी माँ द्वारा उभाड़ा हुआ विद्रोह शान्त किया।

अब कुत्ता घर का प्राणी हो चुका था। जब तक लड़का न सोता, दोनों साथ-साथ रहते। वह बालक ही उसका संरक्षक और साथी था। यदि उसके बड़े लोग कभी कुत्ते को ठुकराते या मारते तो लड़का

चिल्लाकर—रोकर इसका विरोध करता। एक बार इस प्रकार चिल्लाते हुए उसकी रक्षा के निमित्त दौड़कर पिता के बीच में पड़ने पर बालक को पिता के हाथों सिर में चोट भी खानी पड़ी। उस दिन पिता कुत्ते की किसी बदतमीज़ी पर झल्लाकर उस पर कुछ फेंक कर मार रहा था। तब से घर के लोग ज़रा सावधानी से काम लेने लगे। एक बात और थी, कुत्ता भी अब अधिक चालाक हो गया था। वह अपने ऊपर फेंकी हुई चीज़ों और ठोकरों से बचना सीख गया था। वह उस छोटे से कमरे में—कुर्सी, मेज़, पलंग, संदूक आदि के नीचे छिपना, दुबकना, सिकुड़कर निकलना आदि बड़ी फुर्ती और सफ़ाई से करने लगा। वह तीन-चार आदमियों के झाड़ू, ईंट, पत्थर, डंडे आदि के प्रहार को एक साथ रोक लेता था। मजाल क्या थी कि कोई कामयाब हो सके। और अगर कभी उन्हें सफलता भी हुई तो बस नाम मात्र की। उसका शरीर सदा अछूता रहता।

बालक की उपस्थिति में ये सब बातें न होतीं। लोग समझ चुके थे कि अगर कुत्ते को किसी ने दिक किया तो लड़का आसमान सिर पर उठा लेगा और उसे चुप कराना असंभव सा हो जायगा। इस उपद्रव के डर से कुत्ते की जान बची रहती थी।

परन्तु लड़का उसके साथ रहकर कब तक उसकी

रक्षा करता। रात में जब वह सो जाता, उसका खैरा साथी किसी अँधेरे कोने से चिल्ल-पों मचाता—और इतना चिल्लाता कि घर के सारे लोग उसे कोसते। उसकी चिल्लाहट में छिपी निराशा और निरवलंबता का दुखड़ा कोई न समझता। ऐसे अवसर पर लोग उसे खदेड़-खदेड़कर रसोई में से तरह तरह की चीज़ें उस पर दे मारते।

लड़का स्वयं कभी-कभी कुत्ते को पीटता, यद्यपि यह कहना ज़रा कठिन है कि इसके लिए उसे कोई न्याययुक्त कारण मिला हो। परन्तु उसका साथी उसका दण्ड अपराधी की भाँति स्वीकार करता। वह ऐसा कुत्ता न था जो शहीद होने या बदला लेने की हद तक पहुँचने की बात सोचता। वह बड़ी नम्रता से दण्ड स्वीकार करता और अपने मित्र को क्षमा करके उसका हाथ अपनी लाल-लाल जीभ से चाटने लगता। कदाचित् उसे ध्यान था कि उसके छोटे हाथों में दर्द होने लगा हो—उसे पीटते-पीटते।

जब लड़के पर आफ़त आती तो वह उसके समीप बैठता और उसकी पीठ पर अपना सिर रख देता। ऐसे अवसर पर हम नहीं कह सकते कि उसके साथी कुत्ते ने कभी उसकी ज्यादतियों की शिकायत की हो। वह कुत्ता करता भी क्या?

लड़का घर के बाहर सैर करने जाता। ऐसे

समय उसका मित्र उसके साथ होता। कभी-कभी वह आगे होता। परन्तु वह थोड़ी-थोड़ी दूर पर लौट कर पीछे देख लेता कि उसका मित्र आ रहा है या नहीं। अपनी यात्रा के विषय में मानों उसे बड़े महत्व का ध्यान हो—मानों उसे इस पर गर्व हो कि वह ऐसे बड़े आदमी की सेवा में है।

एक दिन कुटुम्ब का अगुवा—उस लड़के का पिता, क्लब से ख़ूब नशे में लौटा था। वह झूम-झूमकर घर की चीज़ें इधर-उधर फेंक रहा था और दे रहा था गालियाँ—अपनी स्त्री और नौकरों को। इतने में अपने मालिक, लड़के के पीछे-पीछे वह कुत्ता भी वहाँ आ पहुँचा। दोनों सैर करके लौटे थे।

बालक की चतुर अभ्यस्त आँखों ने पिता की हालत ताड़ ली। वह तुरन्त मेज़ के नीचे छिप गया। कुत्ता ऐसे मामलों से अनभिज्ञ होने के कारण असली परिस्थिति न समझ सका। उसने समझा—यह खेल-कूद का निमंत्रण है। वह लड़के के पास पहुँचने के लिए फ़र्श पर उचकने लगा, मानों छोटा खैरा कुत्ता अपने मित्र से मिलने जा रहा हो।

घर के मालिक ने उसे देख लिया। खुशी से वह चिल्ला उठा। उसने उस पर चाय की केतली दे मारी। कुत्ता भय और आश्चर्य से चिल्लाता हुआ बचने की जगह ढूँढ़ने लगा कि उस पुरुष ने एक गहरी

ठोकर जमायी। वह झोंके से आगे गिरा, मानों लहरों में वह बह गया हो। अब उसने उस पर फिर चाय का बर्तन दे मारा। वह फ़र्श पर चित्त गिर गया। इस मौके पर लड़का शोर-गुल मचाता हुआ निकल पड़ा। घर के अगुवा ने इस पर कुछ ध्यान न दिया। कुत्ता अपनी इस दुर्दशा पर जीवन से निराश हो चुका था। वह उतान होकर विचित्र प्रकार से पैरों को समेटे था—उसकी आँखों और कानों की भावभङ्गी से बड़ी दीनता और याचना टपकती थी।

परन्तु पिता तो आनन्द मनाने की धुन में था। उसके जी में आया यदि इसे उठाकर खिड़की से बाहर फेंक दूँ तो कैसा हो। फिर क्या था। उसने लपककर कुत्ते की पिछली टाँगें पकड़लीं और उसे उठाकर फेंक ही दिया—खिड़की से बाहर! उस पाँचवें मंजिल के ऊपर से!

गिरते हुए कुत्ते को देखकर मोहल्ले के लोग आश्चर्य में पड़ गये। सामने खिड़की से झाँकती हुई एक विधवा घबराहट में भाग खड़ी हुई। दूसरे मकान की खिड़की से झाँकता हुआ पुरुष गिरते-गिरते बचा। छत पर कपड़े फैलाती हुई नौकरानी 'हाय' कर के पैर पटकने लगी। लड़के 'हू' 'हू' करते हुए दौड़ पड़े।

कुत्ता नीचे गिरा—उस पँचमंजिले मकान के नीचे से। पहले वह नीचे की एक दूकान के टीन की छत पर आया। दूकानदार चौंक कर, काम छोड़ कर, निकलने ही वाला था कि खून से लथपथ एक कुत्ते की लाश लुढ़क कर नाली में गिर पड़ी।

ऊपर कमरे में वह बालक यह देखकर 'हाय' 'हाय' कर रोता हुआ बाहर भागा। अनगिनती सीढ़ियों से बच-बचाकर उतरने में उसे बहुत समय लग गया।

जब लोग कुछ देर बाद लड़के को ढ ँढ़ने निकले तो लोगों ने देखा कि वह सड़क पर अपने साथी कुत्ते को गोद में लिये बैठा है। उसी मरे खैरे कुत्ते की लाश को !*

*एक अमेरिकन कहानी।

बर्लिन की एक घटना

गत महायुद्ध की बात है।

बच्चों और स्त्रियों से भरी ट्रेन रेंगती हुई बर्लिन स्टेशन से बाहर हो रही थी। शायद ही उसमें कोई 'जवान' दिखाई पड़ता हो। एक डिब्बे में एक बूढ़ा, देहाती सिपाही, एक वयोवृद्ध महिला के पास बैठा था, जो देखने में कमजोर और बीमार सी लग रही थी। गाड़ी के पहियों की गडगडाहट के बीच डिब्बे में बैठे हुए यात्री उसे गिनते हुए सुनते—'एक दो! तीन!' और वह अपने विचारों में डूबी हुई-सी दीखती थी। बीच-बीच में वह बुढ़िया रह-रहकर अपने शब्दों को दोहरा देती थी।

सामने बैठी हुई दो लड़कियाँ बुढ़िया के इस विचित्र आचरण पर टीका-टिप्पणी करती हुई चहक रही थीं। एक वयोवृद्ध पुरुष इस पर कुछ गुर्राया। सन्नाटा छा गया।

'एक, दो, तीन!'—उस वृद्धा ने अपने आप दोहराया था। इस पर लड़कियाँ अपनी खिलखिला-हट न रोक सकीं। वह सन से सफ़ेद बालोंवाला

बूढ़ा तब कुछ आगे झुका। उसने गंभीरता से कहा, "पुत्रियो! शायद तुम्हें मालूम नहीं यह दुखिया मेरी स्त्री है। हमारे तीन लड़के अभी हाल में, युद्ध में मारे गये हैं। मैं स्वयं रणक्षेत्र पर जाने के पूर्व उनकी दुखिया माँ को पागलखाने पहुँचाने जा रहा हूँ।"

डिब्बे में अब घोर सन्नाटा छा गया था।*

*एक अमेरिकन कहानी।

दर्पण

पत्र १

प्यारी अनीस! तुम मुझे पत्र लिखने को कहती हो। मुझे—दुखिया अन्धी को, जिसकी क़लम अँधेरे में टटोलती हुई लिखती है! क्या तुम्हें मेरे पत्रों की मलिनता पर करुणा नहीं आती? वे अन्धकार में लिखे गये हैं! क्या तुम्हें उन करुण विचारों का भय नहीं है जो अन्धों को घेरे रहते हैं?

प्यारी अनीस! तुम तो सुखी हो; तुम देख सकती हो। देखना, ओह देखना! नीले आकाश, सुनहले सूर्य तथा नाना प्रकार के रंगों को पहचानना—कैसा अपूर्व सुख है! सच है, मुझे भी कभी इसका सौभाग्य हुआ था। परन्तु—जब मेरी आँखों की ज्योति लुप्त हुई थी, उस समय मेरी अवस्था ही क्या थी—केवल दस वर्ष। अब मैं पच्चीस में पहुँची हूँ। पूरे पन्द्रह वर्ष हुए जब से सारी वस्तुएँ मेरे लिए काली रात्रि के समान प्रकाशहीन हैं!

प्यारी अनीस! व्यर्थ, मैं प्रकृति के सौंदर्य के स्मरण

का प्रयास करती हूँ। क्या मुझे उसके रूप का स्मरण है ? मैं पाटल का सुरभ सौरभ अनुभव करती हूँ, स्पर्श से उसके आकार का अनुमान करती हूँ, परन्तु उसका सुविख्यात सुवर्ण—जिससे सुन्दर कोमलाङ्गियों की उपमा दी जाती है—क्या मुझे याद है ? अथवा क्या मैं उसका वर्णन करने में समर्थ हूँ ? कभी-कभी इस घने अन्धकार के आवरण में एक अज्ञात ज्योति की रेखा छिटक जाती है। डाक्टरों का कथन है—यह रक्त का संचार है और वे कहते हैं कि इससे ज्योति के पुनरुद्धार की आशा की जा सकती है। व्यर्थ का भ्रम है ! पूरे पन्द्रह साल से जिसने उस प्रकाश की छाया तक नहीं देखी जो पृथ्वी को सौंदर्यमय बनाता है, क्या उसे मृत्यु के पूर्व उसके दर्शन की आशा हो सकती है ?

उस दिन मुझे कल्पनातीत अनुभव हुआ। अपने कमरे में टटोलते हुए मेरा हाथ दर्पण पर जा पड़ा। मैं उसके सामने बैठ गई और अपने बाल सँवारने लगे। क्या कभी तुमने इसकी कल्पना की थी ? अपने को देखने के लिए मैं क्या न न्योछावर कर देती। केवल यही जानने के लिए कि मैं सुन्दर हूँ, मेरा रंग उतना ही गोरा है जितना मेरा शरीर कोमल। अथवा मेरी आँखें उतनी ही सरस हैं जितने मेरे काले और सटकारे केशकलाप। आह !

स्कूल में लोग कहा करते थे कि उन बालिकाओं के दर्पण में शैतान आ बैठता है जो बहुत देर तक दर्पण में निहारा करती हैं। यदि यह सच है तो मेरे दर्पण में शैतान-राज बुरे फँसे होंगे ! जो कुछ हो, मैंने तो उसे देखा नहीं।

अपने कृपापत्र में तुम पूछती हो (उसे अभी मुझे लोगों ने सुनाया है) कि क्या यह सच है कि महाजन के दिवाले से मेरे माता-पिता का सर्वस्व चला गया। मैंने तो इसके विषय में कुछ सुना नहीं। नहीं—वे काफ़ी धनी हैं। मुझे सुख के सारे सामान मिलते हैं। जहाँ कहीं मेरा हाथ पड़ता है मुझे मख़मल, और रेशम ही जान पड़ता है। मेरे चारों ओर विलास के ही सामान बिखरे रहते हैं। मुझे एक से एक बढ़िया भोजन मिलता है। इतना ही नहीं, वरन् षट्रसों का, मेरी रसना नित्य आनन्द उठाती है। अनीस ! तुम स्वयं समझ सकती हो कि मेरे घर के लोग बड़े आनन्द से रहते हैं या नहीं।

प्यारी सखी ! मुझ पर दया कर पत्र का उत्तर अवश्य लिखना, अब तो तुम पर्यटन से लौटकर आ भी गई होगी।

पत्र २

अनीस ! तुम्हें शायद पता नहीं, मैं तुम से क्या कहने जा रही हूँ। हँसते-हँसते तुम पागल हो

जाओगी। यही समझोगी कि आँखों की ज्योति के साथ इसकी बुद्धि भी चली गई। सुनती हो—मेरा एक प्रेमी है!

सच, सखी! मुझ अन्धी का भी एक प्रेमी है। वह उतना ही ज़िद्दी, उतना ही स्नेहशील है जैसे किसी राजकुमारी का प्रेमी हो। अब और क्या कहूँ? प्रेम सचमुच अन्धा है। इसी से मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ।

वह मेरे यहाँ कैसे पहुँचा, मैं नहीं कह सकती। मुझे यह भी पता नहीं कि उसका विचार आगे क्या है। पर इतना अवश्य बतला सकती हूँ कि उस दिन भोजन के समय वह मेरी बाईं ओर बैठा और उसने मेरी बड़ी आव-भगत की।

मैंने कहा, "मुझे आपसे मिलने का यह पहला सौभाग्य है।"

"सच," उसने कहा—"पर मैं तुम्हारे माता-पिता से परिचित हूँ।"

"मैं आपका स्वागत करती हूँ," मैंने उत्तर दिया "आप उनका आदर करते हैं—वे मेरे पूज्य हैं।"

उसने धीरे से कहा, "केवल वे ही नहीं हैं जिनसे मेरा स्नेह है।"

"ओह," मैंने अनजाने कहा, "फिर और कौन यहाँ है जिसे तुम चाहते हो?"

"तुम—" वह एकाएक कह बैठा।

"मैं—इसका मतलब ?"

"मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।"

"मुझे ?—मुझसे तुम प्रेम करते हो ?"

"हाँ—और पागल की भाँति !"

यह सुनकर मैं लज्जित हो गई और मैंने अपनी ओढ़नी ज़रा और खींच ली। वह चुप होकर बैठ गया।

"तुमने बे-सोचे-समझे ऐसा कह डाला।"

"ओह! तुम मेरी आकृति, आचरण और व्यवहार में इसका प्रतिबिम्ब देख सकती हो।"

"हो सकता है, पर मैं तो अन्धी हूँ। अन्धी से कहीं कोई प्रेम करता है ?"

"इसकी मुझे तनिक पर्वा नहीं," उसने प्रसन्नता से ज़ोर देकर कहा—"यदि तुम देख नहीं सकतीं तो इसमें हानि ? क्या तुम्हारा शरीर सुन्दर नहीं है ? क्या तुम्हारी आकृति मनमोहिनी नहीं है ? क्या तुम्हारे सुन्दर केश लम्बे और काले नहीं हैं ? तुम्हारे कोमल कर क्या कमल सी कोमलता नहीं रखते ?"

उसके चुप हो जाने पर भी उसके शब्द मेरे कानों में गूँजते रहे। मैं सोचती थी—तो इनके कथनानुसार मेरा शरीर सुन्दर है, मेरी आकृति मनभावनी है, मेरे केश लम्बे और काले हैं, मेरे

कर कोमल और सरस हैं। ओह ! अनीस, प्यारी अनीस ! अन्य युवतियों के लिए यदि कोई ऐसी तारीफ़ करे तो उसे केवल प्रेमी कहेंगे। पर अन्धी के लिए वह प्रेमी ही नहीं वरन् 'दर्पण' भी हुआ।

मैंने फिर कहा, "क्यों सचमुच मैं ऐसी ही सुन्दर हूँ जैसा तुम कहते हो ?"

"मैंने उतना भी नहीं कहा जितना कहना चाहिए था।"

"अच्छा, तुम चाहते क्या हो ?"

"विवाह।"

मैं इस विचार पर ठहठहा कर हँस पड़ी। मैंने कहा, "सच ? अन्धी और आँखवाले का ब्याह ! दिन और रात का सम्बन्ध ! क्या यह असम्भव नहीं है ?—नहीं ! नहीं ! मेरे माता-पिता यथेष्ट सम्पन्न हैं। अविवाहित जीवन मेरे लिए भार नहीं होगा। मैं आजन्म कुमारी ही रहूँगी।"

वह चुपचाप चला गया। इससे क्या, उसने मुझे बतला तो दिया कि मैं सुन्दर हूँ। पर जाने क्यों मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मैं उससे स्नेह करने लगी—अपने प्यारे दर्पण से !

पत्र ३

ओह अनीस ! मैं तुमसे क्या कहने जा रही हूँ ! इस जीवन में क्या-क्या दुखभरी अकल्पित घटनाएँ

घटती हैं! तुमसे उसका वर्णन करते हुए मेरी ज्योति-हीन आँखें बरस रही हैं।

उस अपरिचित से मिलने के कई दिन पीछे, जिसे मैं अपना दर्पण कहती हूँ, एक दिन मैं अपनी माता का हाथ पकड़े बाग़ में टहल रही थी कि किसी ने उसे एकाकएक ज़ोर से पुकारा। मुझे ऐसा जान पड़ा मानो नौकरानी घबराहट में उसे पुकार रही है।

मैंने पूछा, "माँ! बात क्या है?" मुझे अज्ञात वेदना हुई।

"कुछ नहीं, बेटी, कोई आया है। लोगों ने मिलना-जुलना तो पड़ता ही है।"

अच्छा मैंने उसे आलिङ्गन करते हुए कहा, "तो तुम जाकर अतिथि का सत्कार करो।"

उसने मेरे माथे का चुंबन लेकर प्रस्थान किया। मुझे कँकरीली भूमि पर पैरों की आहट धीरे-धीरे दूर होती सुनाई पड़ी।

उसके जाने के थोड़ी देर बाद मुझे दो पड़ो-सियों की बात-चीत सुनाई पड़ी। वे अपनी समझ एकान्त में बैठे बातें कर रहे थे। तुम्हें मालूम है, अनीस, जब ईश्वर हमारी किसी इन्द्रिय को हर लेता है तो वह दूसरे को और भी चैतन्य कर देता है— हमारे संतोष ही के लिए सही। अन्धे के कान

आँखवालों से तेज़ होते हैं। मुझे उनकी सारी बातें सुनाई पड़ गईं, यद्यपि वे बहुत धीरे-धीरे बातें कर रहे थे।

"उफ़्, बड़े दुःख की बात है, दलाल फिर आया है। और बेचारी लड़की को कुछ भी नहीं मालूम। उसे पता नहीं कि उसके अनजान में, वे उसका लाभ उठा कर उसे प्रसन्न रखने का प्रयत्न कर रहे हैं।"

"इसका तात्पर्य ?"

"इसमें भी कुछ शक है ? उसकी समझ में उसके घर पर आराम-ही-आराम है—पर बात उलटी ही है। उसे तो बढ़िया बढ़िया भोजन मिलता है, पर उस बेचारी को क्या पता कि घर की हालत उससे छिपाई जा रही है और कदाचित् ही उसके माता-पिता को कभी सूखी रोटी छोड़ और कुछ खाने को नसीब होता हो।"

अनीस ! तुम मेरी मनोव्यथा का अनुमान कर सकती हो। उन्होंने मुझ पर सुख का जादू डाला था। वे स्वयं कष्ट झेल कर मुझे सुखी बनाने की चेष्टा कर रहे थे ! कैसी अपूर्व ममता है ! संसार का सारा धन भी देकर क्या इससे उऋण होना संभव है ?

पत्र ४

मैंने किसी से यह प्रकट नहीं किया कि मुझे इस दुखदाई, पर भारी रहस्य का पता चल गया है। मेरी माँ को यह जान कर दुख होगा कि उसकी दरिद्रता छिपाने का सारा प्रयत्न निष्फल हुआ। मैं अब भी वैसी रहती थी मानो मुझे अपने घर की आर्थिक दशा का कुछ भी ज्ञान ही नहीं। पर मैंने उसकी रक्षा करने का निश्चय कर लिया था।

सुवर्ण, जो मेरे प्रेमी का नाम है, मुझसे मिलने आये और—मुझे कहते लज्जा आती है—मैं उनसे हिल-मिल कर बातें करने लगी हूँ। मैंने कहा, "क्या तुम्हारा अब भी मेरे प्रति वही विचार है ?"

"हाँ," उन्होंने कहा—"मैं तुमसे प्रेम करता हूँ—और इसलिए कि तुम्हारी सुन्दरता में निष्कपटता और विनय का अधिक भाग है।"

"और मेरा शरीर ?"

"लता सी कोमल !"

"अच्छा, मेरा मुखड़ा ?"

"चन्द्र के समान—पर निष्कलंक।"

"सचमुच ?"—यह कहकर मैं हँसने लगी।

"इसमें हँसने की कौन सी बात थी ?"

"यही सोच कर कि तुम मेरे 'दर्पण' हो। मैं अपना प्रतिबिम्ब तुम्हारे शब्दों में देख लेती हूँ।"

"प्रिये ! ईश्वर करे मैं सदा तुम्हारा दर्पण बना रहूँ ।"

"क्या तुम इस पर राज़ी हो ?"

"हाँ—और सदा वास्तविक दर्पण की भाँति तुम्हारे गुणों, तुम्हारे शीलों का प्रतिबिम्ब दिखाने के लिए । बस मुझे अपने प्रेम का पात्र बना लो । मेरे पास कुछ सम्पत्ति है । तुम्हें किसी वस्तु की कमी न रहेगी । मैं सारी शक्ति लगाकर तुम्हें प्रसन्न रखने की चेष्टा करूँगा ।"

इसे सुन मुझे अपने माता-पिता का ध्यान आया। मेरे विवाह से उनका बोझ कितना हलका हो जायगा ।

मैंने उत्तर दिया, "यदि मैं तुम्हारी दासी बनना स्वीकार कर लूँ तो तुममें पुरुष की आत्मा को कितनी चोट पहुँचेगी । क्या मैं तुम्हें देख सकती हूँ ?"

"हाँ !" उन्होंने कहा, "मैं तुम्हें एक बात बतलाना चाहता हूँ ।"

"वह क्या ?" मैंने पूछा ।

"मैं प्रकृति का कुरूप बालक हूँ । मुझमें न रूप है न शारीरिक सुडौलता । चेचक ने मेरे चेहरे की दुर्गति कर डाली है । तुम जैसी नेत्रहीन को स्वीकार कर मैं केवल अपना स्वार्थ साध रहा हूँ और यही

सोच कर कि इस तरह मुझे इस हेतु नित्य लज्जित न होना पड़ेगा।”

मैंने अपना हृदय उन्हें समर्पण करते हुए कहा—“यह तो मैं नहीं कह सकती कि तुम अपने साथ अन्याय कर रहे हो, पर इतना तो अवश्य कहूँगी कि तुम सच्चे और सुशील हो। अस्तु, मुझे अपने चरणों में स्थान दो। कुछ भी हो—कोई भी वस्तु इस संसार में तुम्हारे प्रति मेरे प्रेम को अन्यत्र मोड़ न सकेगी। तुम्हारा प्रेम, मेरे अन्धकार रूपी मरुभूमि में जलाशय का काम देगा।”

मैंने अच्छा किया या बुरा? सखी अनीस! मैं कुछ नहीं कह सकती। पर मैं अपने माता-पिता का उद्धार कर रही थी। कदाचित् अन्धकार में भटकते हुए मैं ठीक मार्ग पर जा लगी थी।

पत्र ५

सखी! तुम्हारे प्रेम और बधाई से भरे कृपापत्र के लिए अनेक धन्यवाद। हाँ, मेरे विवाह को सपन्न हुए दोमास हो गये, और मैं अब अपने को सब महिलाओं से सुखी समझती हूँ। मेरी कोई अभिलाषा शेष नहीं रही। पति के प्रेम तथा माता-पिता के दुलार को देखते हुए मुझे अपनी असमर्थता पर दुख नहीं है।

जिस दिन मेरा विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ था, मेरे दर्पण ने—मैं उन्हें इसी नाम से पुकारती हूँ—उस महोत्सव के समारोह का वर्णन मुझे सुनाया था। संध्या को हम वाटिका में टहलते हैं और वे मुझे पुष्पों और पक्षियों के सौन्दर्य का वर्णन सुनाते हैं और स्पर्श से मैं उनका ज्ञान प्राप्त करती हूँ। कभी-कभी हम नाटक देखने जाते हैं और वे कुशलता से मुझे उन बातों का ज्ञान कराते हैं जो मेरी बन्द आँखें कदाचित् ही देख सकें। ओह! यदि वे कुरूप हैं तो मेरी हानि? मुझे सुन्दर और कुरूप का ज्ञान नहीं है। मैं केवल यही जानती हूँ—कृपा क्या है—प्रेम क्या है।

सखी! बिदा लेती हूँ। मेरे सुख से तुम भी सुखी हो।

पत्र ६

अब मैंने माँ की पदवी प्राप्त की है। सखी अनीस! मैं एक पुत्री की माता हूँ। मैं उसे देख नहीं सकती। लोग कहते हैं वह बड़ी ही सुन्दर है। वे कहते हैं वह ठीक मुझे पड़ी है। पर मैं उसे देख नहीं सकती। ओह! माता की ममता कितनी प्रबल होती है। नीले आकाश का दर्शन न करना, अपने पति, माता-पिता तथा अन्य प्रियजनों का अन्धकार

में रहना—यह सब कुछ मैंने चुपचाप सहन कर लिया—पर मुझे जान पड़ता है अपनी बच्ची का मुख न देखना मेरे लिए असह्य है। ओह! यदि मेरी आँखों का काला परदा एक क्षण, एक निमिष के लिए हट जाता! यदि उसके धुँधले प्रकाश में भी मैं उसका प्यारा मुखड़ा देख पाती तो मैं अपने को धन्य मानती और शेष जीवन में मुझे इसका गर्व होता।

इस विषय में वे मेरा दर्पण नहीं बन सके। उनका यह कहना व्यर्थ है कि मेरी प्यारी पुत्री के बाल घुँघरवाले हैं, आँखें सुन्दर और बड़ी-बड़ी हैं और उसका मुख प्यारा और भोला-भाला है। इसे सुनने से मुझे लाभ। जब वह मेरे गले से लिपट जाती है तो क्या मैं अपनी बच्ची का मुख देख पाती हूँ?

पत्र ७

मेरे पति-देव साक्षात देवता हैं। जानती हो वे क्या कर रहे हैं? मेरे अनजान में वे कई वर्षों से मेरे इलाज का प्रबन्ध कर रहे हैं। उनकी इच्छा है कि मेरी आँखों की ज्योति लौट आवे। और जानती हो डाक्टर कौन है? वे स्वयम्! केवल मेरे लिए ही उन्होंने डाक्टरी करना स्वीकार किया है। इसके पूर्व वे इससे हिचकते थे। कल उन्होंने मुझसे कहा—"प्रिये! तुम जानती हो—मैं क्या चाहता हूँ?"

"क्या यह सम्भव है ?"

"हाँ, वह औषधि जो मैंने तुम्हें यह कह कर दी थी कि इससे सुन्दरता बढ़ती है केवल अस्त्रप्रयोग की पूर्व पीठिका मात्र थी।"

"कैसा अस्त्र-प्रयोग ?"

"हाँ—आँखों के लिए।"

"तुम्हारा हाथ काँपेगा नहीं।"

"नहीं—मेरा हाथ दृढ़ रहेगा—मेरा प्रेम जो दृढ़ है।"

मैंने उत्तर दिया, "तुम मनुष्य नहीं देवता हो।"

"ओह!" उन्होंने मुझे आलिङ्गन करते हुए कहा—"एक बार मुझे प्यार कर लो। इस अन्तिम सुख का अनुभव कर लेने दो।"

"इसका मतलब, प्रियतम ?"

"ईश्वर की कृपा से तुम्हारी आँखों की ज्योति शीघ्र मिली जाती है।"

"और तब—?"

"तब तुम देखोगी मैं कैसा हूँ—नाटा, दुबला और भद्दा।"

यह सुनकर मुझे यह जान पड़ा मानों मेरी अन्धी आँखों से ज्योति की किरणें फूट निकली हों। यह मेरी कल्पना थी जो दीपशिखा की भाँति दीप्तमान थी।

"प्रियतम !" मैंने उठकर कहा—"यदि तुम्हें मेरे प्रेम का विश्वास नहीं है, यदि तुम समझते हो तुम्हारा रूप न देख कर ही मैं तुम्हारी दासी बनी हूँ तो मुझे मेरे अन्धकारमय, एकान्तमय संसार ही में पड़ी रहने दो।"

उन्होंने कुछ उत्तर न देकर केवल मेरे हाथ को ज़ोर से दबा दिया।

मेरी माँ के कहने से मुझे ज्ञात हुआ कि कदाचित् आपरेशन एक मास में होगा। मैं अपने पति के विषय में उन बातों की कल्पना करने लगी। माँ ने मुझसे कहा था कि उनके चेहरे पर चेचक के दाग़ हैं। पापा का कहना था कि उनके बाल बिरले हैं। हमारी नौकरानी कहती थी कि वे बूढ़े हैं।

चेचक के दाग़ अपने वश की बात नहीं, सिर में बालों का कम होना मानसिक शक्ति का द्योतक है। परन्तु बूढ़ा होना यह तो दुःख का विषय है और यदि कहीं उनकी मृत्यु पहले हुई तो मैं क्या करूँगी ?

वास्तव में, अनीस ! तुम्हें मानना पड़ेगा कि मैं बड़े संकट-बिकट में हूँ। परन्तु ईश्वर से प्रार्थना करो। कौन जाने उसकी कृपा से मैं शीघ्र तुम्हारा प्रिय पत्र पढ़ने योग्य हो जाऊँ ?

अन्तिम पत्र

सखी ! इस पत्र का अन्त बिना आदि पढ़े न

पढ़ना। मेरे दुख-परिवर्तन और सुख में धीरे-धीरे भाग लेना।

दो सप्ताह हुए मेरा आपरेशन हुआ। किसी ने काँपता हुआ हाथ मेरी आँखों पर रखा। मैं दो बार चीख उठी और फिर मुझे ऐसा जान पड़ा मानों मैं दिन, प्रकाश, रंग और सूर्य देख रही हूँ। तुरन्त ही एक पट्टी मेरे जलते हुए माथे पर बाँध दी गई। मैं चंगी हो गई केवल थोड़े धैर्य्य और साहस की कमी रह गई थी—उन्होंने मेरे जीवन को आनन्दमय बना दिया था।

परन्तु मैं तुमसे कहती हूँ। मैंने मूर्खता की। मैंने अपने डाक्टर की बात न मानी। उसे नहीं मालूम है। अब तो कोई डर की बात नहीं है। वे मेरी बच्ची को मेरे पास ले आये। नौकरानी उसे गोद में लिये थी। बच्ची ने कोमल स्वर से पुकारा "माँ!"

मैं अपने को रोक न सकी। मैंने पट्टी नोंच कर फेंक दी।

"मेरे प्राण! ओह यह कैसी सुन्दर है।"—मैं चिल्ला उठी—"मैं उसे देख रही हूँ, ओह! मैं उसे देख रही थी!"

नौकरानी ने तुरन्त फिर पट्टी बाँध दी—परन्तु

मैं अन्धकार में न थी। उस सुन्दर मुखड़े की याद ने मेरे प्रकाशरहित लोक को आलोकित कर दिया था।

कल मेरी माँ मेरी पट्टी बाँधने आई। वह बहुत देर तक मेरा शृङ्गार करती रही। सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और आभूषण मुझे पहनाये गये। जब सारा शृङ्गार हो चुका तो मेरी माँ ने कहा—"पट्टी खोल डाल बेटी।"

मैंने वैसा ही किया—यद्यपि कमरे में अधिक प्रकाश न था पर मुझे उससे अधिक कोई वस्तु सुन्दर न जँची। मैंने अपने माता-पिता और लड़की को हृदय से लगा लिया।

"तुमने अपने सिवा," पिता जी ने कहा—"सब को देख लिया।"

"और उन्हें ?" मैंने सहसा कहा, "वे कहाँ हैं ?"

"वे छिपे हैं"—माँ ने कहा।

मुझे उनकी कुरूपता का ध्यान आ गया, जो मैंने सुन रखा था।

"उन्हें बुलाओ मेरे सामने"—मैंने बिनती की, "उनसे सुन्दर कदाचित् ही कामदेव हों।"

"अच्छा, जब तक वे आते हैं"—माँ ने कहा—"तब तक तू अपना सुन्दर रूप दर्पण में देख ले। कम-से-कम अब तो तू अपनी सुन्दरता अच्छी तरह देख ले जिसमें फिर पछतावा न रहे।"

मैंने वैसा ही किया। कुछ तो रूपगर्व से, कुछ कुतूहलप्रेरित हो।

यदि मैं कुरूप ही हूँ तो क्या ? यदि घरवालों ने अपनी आर्थिक दशा की भाँति मेरी कुरूपता भी मुझसे छिपा रखी हो तो इसमें हानि ?

वे मुझे शृङ्गारदान के सम्मुख ले गये। मैं आनन्द से चिल्ला उठी। मैंने अपने कोमल अंगों, गुलाब से गालों, नागिन सी लटों, मस्तानी अदा और स्वर्गीय रूप को दर्पण में देखा। मैं अधिक न देख सकी—दर्पण निरन्तर हिल रहा था। मेरा सुन्दर प्रतिबिम्ब उसमें नाच रहा था, मानों मैं ही आह्लाद से विह्वल होकर नाच रही थी।

मैंने कारण जानने के लिए दर्पण के पीछे देखा। एक युवक पीछे खड़ा था—युवक सुन्दर सुगठित। उसकी वेषभूषा कुछ कम मनोहारिणी न थी। एक अपरिचित को देखकर मैं अपने आचरण पर लज्जित हो उठी।

इस पर ध्यान न देते हुए मेरी माँ ने कहा—"ज़रा देख तो। तू कैसी गुलाब-सी सुन्दर है।"

"माँ !" मैंने चिल्ला कर कहा।

मेरे हाथों को निःसंकोच खींचते हुए उसने कहा, "देख तो तेरे कोमल कर कैसे सुन्दर हैं।"

"परन्तु माँ," मैंने धीरे से कहा, "एक अपरिचित के सम्मुख तुम क्या बक रही हो।"

"अपरिचित ? यही तो 'दर्पण' है ।"

"दर्पण को मैं नहीं कहती—यह युवक जो उसके पीछे खड़ा है," मैंने एक साँस में कहा ।

"दुर पगली ! उससे लज्जा करती है ।"–पिताजी बोल उठे—"वह तो तेरा पति है ।"

अरे ! मैं उनका चरण-रज लेने के लिए आगे बढ़ी । पर सहसा पीछे हट गई—उसका यह अपूर्व सौन्दर्य ! ओह ! मैं आनन्द सागर में विभोर हो रही थी ! अन्धी रहकर मैंने अज्ञान में प्रेम किया था । अब मेरे हृदय में नया प्रेम उमड़ रहा था—उस महान् आत्मा के प्रति जिसने मेरे संतोष के लिए अपने को कुरूप प्रसिद्ध कर रखा था ।

मेरी आँखों में आँसू छलछला आये—मैं उनके चरणों में गिर पड़ी । माताजी रोने लगीं । ये आनन्द के आँसू थे । मुझे अपने हृदय से लगाते हुए उन्होंने कहा—"तुम कितनी सुन्दर हो ।"

"झूठी बात !" मैंने सिर नीचा करते हुए कहा ।

"बिलकुल सच ! जब तक मैं तुम्हारा 'दर्पण' था—मैंने तुम्हें सदा वही बतलाया है जो इस समय मेरा साथी यह दर्पण बतला रहा है । विश्वास न हो तो स्वयं उसमें देख लो ।"

मैं निरुत्तर, निस्तब्ध खड़ी थी ।

नीला गुलूबन्द

कौन था वह उड़ाका, कहाँ उससे भेंट हुई थी—ओडेसा में—लेनिनग्राड में—या सिवा-स्टोपोल में—यह सब न पूछो। मैं उसकी बहादुरी की बात नहीं कहने जा रहा हूँ, वरन, उसकी जिससे उसे प्रेरणा मिली थी।

लड़ाकू वायुवान ऊपर मडरा रहे थे—उतरने के लिए। एक के 'काकपिट' से एक नीला गुलूबन्द लहरा रहा था। एकाएक मुझे मध्य युग के वीरों का स्मरण हो आया, जिनकी कहानियाँ मैंने लड़कपन में पढ़ीं थीं। जान पड़ा मानों वह वीर योद्धा उसी भाँति कवच में लैस रणभूमि में कूद पड़ा था—अपने बाहु में पतला गुलूबन्द लपेटे, हाथों में तलवार घुमाता, अपनी प्रियतमा के स्मृति-चिह्न की विजय पताका फहराता—मृत्यु या विजय के लिए तय्यार; मुझे अपने इस अपूर्व स्वप्न पर हँसी आ गयी। प्रायः सभी उड़ाके अपने गले में रेशमी रूमाल बाँध लेते हैं, जिसमें उनके कोट का कड़ा कालर गर्दन में गड़े नहीं। स्पष्ट था कि इसी प्रकार का वह गुलूबन्द संग्राम की तुमुलता में ढीला होकर खुल गया था।

बात यही थी भी। हवाई हमला कर लौटते समय उड़ाकों की टोली के पीछे जर्मन लड़ाकू लग गये थे। लाल सेना के वायुयान चारों ओर से घिर गये थे, और मेजर के गले का, जो उस उड़ाकू टुकड़ी का सर्दार था, गुलूबन्द खुल गया था। मेजर एक जर्मन लड़ाके को मारने में सफल हुआ था पर उसे परिणाम की प्रतीक्षा करने का अवसर नहीं मिला था—उसे अपने एक साथी की रक्षा के निमित्त जाना अधिक आवश्यक प्रतीत हुआ था। दूसरे शत्रु यान का पीछा करते समय मेजर ने शत्रु का एक छिपा हुआ हवाई अड्डा देख पाया था। और वह रेजेमेन्ट कमान्डर से आज्ञा माँगने जा रहा था कि भोर होते ही वह शत्रु के हवाई अड्डे की धज्जी उड़ा दे।

लाल सेना के वायुयान को सुरक्षित स्थान में छोड़ हम तहख़ानों में जा पहुँचे। यह बतला देना भूल गया कि युद्ध स्थल हमारे समीप ही था। हाँ, मेजर से मिलते ही मैंने हँसते हुए पुराने ज़माने के वीर और उसकी प्रेमिका का उल्लेख किया। उसने आँखें उठाकर मुझे क्षण भर देखा और मुस्करा दिया—उसकी आँखें जाग्रण और वायु के कारण तकान से फूल और लाल हो रही थीं। टोप उतारने पर नीले गुलूबन्द में लिपटा हुआ उसका सिर काफ़ी

प्रौढ़ जान पड़ता था। मेरे अन्दाज़ से उसकी उम्र चालीस से कम न होगी।

भोजन के समय हम गत मुठभेड की बात कर रहे थे। एक ने विश्वास दिलाया कि मेजर का मारा हुआ शत्रु का वायुयान अवश्य गिर कर चूर हो गया होगा। फिर वे मेजर के गुलूबन्द के खुल जाने और वायु में लहराने का ज़िक्र कर मज़ाक करने लगे।

"किसी दिन मेजर! तुम्हारा गुलूबन्द तुम्हें वायुयान से पाराशूट की तरह घसीट ले जायगा"— कर्नल ने कहा—"आखिर इस बखेड़े—गुलूबन्द— बिना तुम्हारा काम क्यों नहीं चलता?"

"आराम मिलता है।" मेजर ने उत्तर दिया, "गले को घुमाने में आराम रहता है।"

"और मेरा वह मित्र अपनी प्रेमिका का मोज़ा गले में लपेटे रहता है—मेजर! तुम उससे अपना गुलूबन्द बँटा क्यों नहीं लेते।"

"शपथ नहीं बाँटा जा सकता—कामरेड कर्नल!," मेजर ने कुछ मज़ाक, कुछ गंभीरता से उत्तर दिया— "मैं उसे ठिकाने से बाँध रखूँगा—जिस में फिर न खुले—"

"कर्नल! यह इनका कवच है! पूरा तावीज़! मेजर कभी उसे अपने से अलग नहीं करेगा—उसे वह सदा साथ रखता है—सोते, जागते, लड़ते—

यहाँ तक कि नहाते समय भी। आप ही की उम्र के हैं—आप इन्हें ज्यादा समझ सकते हैं"—उस मित्र ने कहा जिसकी ओर कर्नल ने अभी इशारा कर व्यङ्ग किया था।

आज्ञा मिल चुकी थी कि प्रातः पाँच बजे उन्हें प्रस्थान करना होगा—अतः उड़ाके अब रात के विश्राम के प्रबन्ध में लगे। मैं मेजर के साथ ही लेटा। अपनी जगह ठीक कर वह नीला गुलूबन्द लपेट अपने गालों के नीचे रख कर सोया था।

मेज़ पर लैम्प जल रहा था। रह-रह कर वह भभक उठता और मुझे तहख़ाने के ऊपर बालू की वर्षा की ध्वनि सुनाई पड़ती थी। हमारे हवाई अड्डे पर शत्रु की भयानक गोलाबारी हो रही थी। हम उड़ाकों के लिए यह लोरी का काम देती है। हमारे साथियों में अधिकतर आराम से सो रहे थे—उनमें दो एक की तो नाक बोल रही थी—जिनके खुर्राटों में गोली की गरज की आवाज़ भी लुप्त हो जाती थी।

मेरे गालों से वह गुलूबन्द छू गया—मुझे ऐसा लगा मानों उसमें से एक मन्द मधुर सगंध निकल रही थी। मेरी विचार-धारा चल पड़ी। उसके रेशमी तहों से एक सन्दरी आविर्भूत हुई जिसके सुन्दर गोरे कंधों पर यह शोभा देता था—और मुझे निश्चय

हो गया कि यह तावीज़ उसी सुन्दरी का प्रेमोपहार था, जो मेजर की वीरता, और प्रभावशाली रोबीले सुन्दर चेहरे पर आसक्त हो गई थी। मेरी आँखों के सामने वह विदाई का दृश्य घूम गया, जब उसने काँपते हुए ओठों और डबडबाई हुई आँखों से उसे ढाढ़स और विश्वास दिलाते हुए बिदा किया होगा— और मैं मान गया, क्यों मेजर उसकी स्मृति-चिह्न की इतनी सतर्कता से रक्षा करता है और उसे अपने तन से दूर नहीं करता, और क्यों वह उसे अपूर्व शक्ति भरा हुआ समझता है।

मैंने गर्दन उठाई। मेजर गहरी नींद में सो रहा था। उसका शान्त, थका हुआ चेहरा मेरे काल्पनिक नायक के मुखड़े से बिलकुल न मिलता था। वह तो निर्भ्रान्त सैनिक का चेहरा था—सच्चे लड़ाके का, जो युद्ध में, विश्राम से बरबस बुला लिया गया था। ऐसे सैनिक के सम्बन्ध में किसी युवती की कल्पना के लिए अवसर न था। कदाचित् बात कुछ और ही थी। मुझे स्मरण आया कि उसने एक बार भोजन के समय कहा था कि यहाँ आने के पूर्व वह छुट्टी लेकर अपने बाल बच्चों को देखने गया था, पर वहाँ कोई उसे मिला ही नहीं। नगर शत्रुओं के भय से खाली हो गया था।

मैं सोचने लगा। मेरी आँखों के सामने वह

चित्र आ गया। मेजर अपने सूने मकान में पहुँचा होगा—सभी परिचित वस्तुएँ उसे अपने परिचित कुटुम्ब के प्राणियों का स्मरण दिला रही थीं। पर वहाँ कोई न था—सब चीज़ें इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं। घर वाले जल्दी में घर छोड़ कर भागे थे। मेजर अपने घर के लोगों का स्मरण कर विचारों में डूबा अस्त-व्यस्त कमरे के बीच खड़ा था—इधर-उधर आँखें फाड़ कर देखता हुआ—अपने को रोने से रोकता हुआ, आँखों में क्रोध के आँसू भरे—शायद दुख और यंत्रणा के आँसू। और फिर ऐसा जान पड़ा मानों उस ने सामने पड़े उस नीले गुलूबन्द को उठा लिया—स्मृति-चिह्न के लिए।

इस प्रकार मैं अनेक बातें सोचता रहा। इसी बीच मेजर ने कर्वट ली। "ओह ! क़यामत की नाक बोलती है—" उसने कहा। और मुझे जागता हुआ देख, वह बोला—"ओह ! उसकी नाक गोलों से भी ज़्यादा शोर करती है—"

मेरे उस साथी उड़ाके की नाक ऐसी ही बोलती थी। युद्ध से थका हुआ जब वह सोता था, फिर तो क्या कहना। वह खुर्राटा कि मुर्दा भी जग जाय। रह-रह कर ज़ोर से खुर्राटा लेकर वह चुप हो जाता, मानों वह हमारी बात सन रहा हो। फिर आस-पास कोई गोला गिर कर फूटता और उसकी नाक मानों उसके

उत्तर में फिर चौंक कर बोल उठती—और फिर वही खुर्र-खों की रागिनी आरम्भ हो जाती।

"मैं हरगिज़ नहीं सो सकता"—मेजर बोला; हताश होकर—"अच्छा आओ एक-एक सिगरेट दागा जाय।"

हमारा सिगरेट जल गया—लेटे-लेटे हमारी बातें होने लगीं—जिसमें न गोलेबारी—न गोलों का विस्फोट—न उस सोनेवाले की खुर्र-खों विघ्न डाल सकी।

युद्ध तथा उसकी निरन्तर तय्यारी में, सैनिक कभी किसी से खुलकर बातें नहीं करता। उसके मन की बात उसके हृदय में अमूल्य रत्न की तरह दबी रहती है। परन्तु उसका मन, उसकी वेदना का अनुभव किया करता है। और उसकी आत्मा अपने हृदय का भार हल्का करने के लिए सदा अवसर ढूँढ़ा करती है। इस कारण, साधारण, निश्चित रूप से बातचीत करते समय, यदि कोई परिचित रात भर उसकी बात सुनने को तैयार मिलता है—तो चाहे वह तहखाने में हो जिसके ऊपर गोले गरजते हुए बरस रहे हों, चाहे वह खंदकों में हो—विश्राम के समय, चाहे वह युद्ध के हेतु तैयार जहाज़ के शयन गृह में हो—ऐसे अवसर पर वह अपने हृदय को खोलकर रख देने में तनिक भी नहीं हिचकता। ऐसे

ही अवसरों पर सैनिक के हृदय के भीतर छिपे हुए सुन्दर और गंभीर कंदराओं के दर्शन हो पाते हैं। तभी आपको यह पता चलता है कि इस सैनिक के शौर्य को जगाने के लिए उसके हृदय में शत्रु के विरुद्ध कैसी घृणा भरी हुई है।

मेरी कल्पना-जनित कहानियाँ सत्य के सामने फीकी पड़ गयीं। वह कितना सरल था, पर कितना कठोर, कितना कटु!

युद्ध के आरंभ में मेजर बाल्टिक प्रान्त में नियुक्त हुआ था। लाम पर बुलाये जाते ही उसे समुद्र-निकट-वर्ती एक छोटे से नगर की रक्षा का भार सौंपा गया था। इस नगर के लोग जर्मनों को वही पुराना जर्मन समझते थे—उनका कभी इस पर ध्यान ही न जाता था कि शत्रु नागरिकों पर गोले बरसायेंगे। इसी कारण समुद्र तट पर नागरिक आराम से समुद्र-स्नान का मजा लिया करते थे—सुबह से शाम तक नहानेवाले समुद्र के जल में क्रीड़ा किया करते—आकाश से देखने पर ऐसा लगता मानों गुलाबी रंग की फेन लहरों पर तैर रही हो। मेजर का काम था नगर के ऊपर उड़ते रहना और शत्रु के हवाई जहाजों की ताक में रहना और उनसे नगर और नगरवासियों की रक्षा करना।

आकाश निर्मल था, समुद्र का जल गर्म और

सुखप्रद था—तट की रेत गर्म और स्वर्णमय। रवि-वार, जून मास की २९ तारीख थी। ऊपर गश्त लगाते समय मेजर को बाईं ओर समुद्र पर एक शत्रु यान दिखाई पड़ा। वह उसकी ओर झपटा। दुर्भाग्य से उसका वार खाली गया और शत्रु के उड़ाके की गोली से मेजर के यान की पेट्रोल-टंकी में छेद हो गया—मेजर को नीचे उतरना पड़ा और जर्मन 'जंकर' निकल भागा। मेजर ने देखा कि नगर के ऊपर वायुयान विध्वंसक तोपों के गोले फूट रहे थे—उनकी बाढ़ बराबर जारी थी।

तब वह 'जंकर' समुद्र की ओर लौटा और नीचे की ओर झपटा। तट पर स्नान करनेवाले भयभीत हो जल में शरण लेने पहुँचे। ऊपर से ऐसा लगा मानों मनुष्य रूपी गुलाबी फेन समुद्र की ओर लौट पड़ी है। घबराकर नहानेवाले पानी में जा घुसे—जैसे समुद्र, उन्हें गोलियों से बचा लेगा। कभी-कभी वे छिपने के लिए डुबकी लगा लेते। परन्तु 'जंकर' ने पुनः लौट कर आक्रमण किया। अब वे बेचारे नहानेवाले समुद्र से निकल कर तट की ओर भागे—मनुष्य रूपी लहर तट की ओर लहरा चली—लोग छाते, तंबू, छाजन आदि के नीचे पनाह लेने को उमड़ पड़े—इसी दौड़-धूप में कितने रेती पर निर्जीव होकर गिरे।

क्रोध से उन्मत्त होकर मेजर, बेकार समझता हुआ भी, उस भागते हुए जङ्कर के पीछे गोली चलाता रहा। अंत में उसका इंजन चुप हो गया और उसे वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान हो आया। अब उसे नीचे उतरना होगा—और सिवा तट की रेती के और कोई स्थान उसके लिए न था—परन्तु समस्त रिक्त प्रदेश मनुष्यों से भरा था—औरतें, बच्चे, निहत्थे—एकदम नग्न। वे रेती पर बिछे पड़े थे। अंत में मेजर को एक उपयुक्त स्थान दिखाई पड़ा—निराला मैदान—पर पास ही स्नान घाट के समीप।

उसका वायुयान भूमि पर आया—वह कूदकर भूमि पर लड़खड़ाता हुआ खड़ा हो गया। उसकी आँखों के सामने अंधेरा छा गया। उसे कुछ सुझाई नहीं पड़ रहा था—उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। वह खोया हुआ एक ओर बढ़ा और उसने ठोकर ली। उसने गौर से नीचे देखा—और घबरा कर वह पीछे हट गया!

उसके पैरों के समीप एक लड़की पड़ी थी। उसका सिर कंधे पर लटक रहा था। उसके स्वस्थ चिकने शरीर पर सूर्य की किरणें थिरक रही थीं—और एक हल्की सी छाया उसके अविकसित वक्षःस्थल का प्रदर्शन कर रही थी। उसकी कमर

पर एक रक्त रंचित पेटी लिपट कर बाएँ ओर छाती तक पड़ी थी—तीव्र गोलियों की बौछार का प्रदर्शन करती हुई, जिनसे उसका उदर छलनी हो गया था! अपने फैले हुए हाथों में वह एक हल्का सा नीला गुलूबन्द पकड़े हुए थी—उसका एकमात्र कवच, जिसके सहारे वह उन गोलियों की बाढ़ को रोकने के व्यर्थ प्रयत्न में मरते दम तक लगी रही।

मेजर ने उस नीले गुलूबन्द को उठा लिया—उसके कोमल उँगलियों से धीरे से छुटाकर—जो अभी तक गर्म थीं! और फिर उसी गुलूबन्द को लिए बच्चों, स्त्रियों और युवतियों की लाशों से भरे घाट पर उसने मन ही मन शपथ ली थी।

अपनी शपथ उसने मुझे नहीं बतलाई। परन्तु जिसके शरीर में हृदय है, वह अच्छी तरह समझ सकता है कि मेजर ने क्या कहा होगा—और वह अपनी शपथ कभी न भूलेगा।

"इसे मैं सोते समय भी अलग नहीं करता, जिससे मैं अपने घोर रोष को न भूल जाऊँ"—मेजर ने उठते हुए कहा।

उसने गुलूबन्द को खोल कर दिखाया। उसकी झालर ऐसी लगी जैसे किसी ने उसे चबा डाला हो। कहीं-कहीं गोल गाँठें थीं। कहीं-कहीं साधारण वेणी-जैसी गूथी हुई। कुल मिलाकर आठ वेणी और

छः गाँठें। बातें करते-करते वह एक वेणी बनाने लगा।

"यह आज का शत्रु का यान", उसने गम्भीरता से कहा, "गाँठों से बम्बमारों का बोध होता है। किसी से कहना नहीं। लोग मुझ पर हँसेंगे और कहेंगे मेजर ने अच्छा तमाशा निकाला है"—

वह चुप हो गया—पर चुपचाप गूथने में लगा रहा। पूरी वेणी बनाकर उसने सिर ऊपर उठाया—उसका चेहरा देखकर मैं चकरा उठा।

"यह तमाशा नहीं है"—उसने धीरे से कहा, "जब तक मैं इसकी पूरी झालर में गाँठ नहीं लगा लूँगा—तब तक मेरी आँखों के सामने वह घाट का दृश्य नाचता रहेगा—उस समय मैं उस 'जङ्कर' का काम समाप्त न कर सका—हाँ, यह तो कहो—मास्को की क्या ख़बर है?"

ठीक पाँच बजे भोर सब के सब शत्र के उस हवाई अडे की ख़बर लेने चल पड़े, जिसे मेजर ने देख लिया था। एक के बाद दूसरा वायुयान अँधेरे में उड़ा और यह देखते ही बनता था कि किस कुशलता से वे मेजर की अगुआनी में चले जा रहे थे। डेढ़ घण्टे बाद वे लौटे और फिर एक एक कर नीचे उतरे। अपने तत्कालीन साहसिक आक्रमण से उत्तेजित वे भूमि पर पहुँच कर उसी की बातें कर

रहे थे। सब ठीक रहा—सब ठीक रहा—बड़ी चतुराई से मेजर ने अपना काम किया था—वे बन के ऊपर उड़ते हुए गये थे—ठीक शत्रु के हवाई अड्डे पर जा पहुँचे थे। जर्मनों को गोली चलाने तक का अवसर नहीं मिला था। अन्धकार मिट रहा था। प्रातः काल का प्रकाश फैल रहा था---देखते-देखते शत्रु के अड्डे पर धड़ाका हो रहा था, इमारतें गिर रही थीं, आग लग रही थी। शत्रु का एक भी जहाज़ सामने न आ सका। दूसरे तीसरे झपेटे में उनके सारे वायुयान ठिकाने लगा दिये गये थे। कुल मिला कर नौ बम्ब-वर्षक और आठ लड़ाकू यान थे।

मेजर अभी नहीं लौटा था। आखिर, वह भी दिखाई पड़ा। उसका वायुवान दिखलाई पड़ा—उसके गले से वही नीला गुलूबन्द फहरा रहा था। संभवतः पेट्रोल चुक गया था। किसी तरह वह अड्डे तक पहुँच सका और नीचे उतरा। हम लोग उसके स्वागत के लिए दौड़े। उसका गुलूबन्द उसके गले से झूल रहा था और उस पर खून के ताज़े धब्बे चमक रहे थे।

"कर्नल !" उस मेजर ने कहा—बिना हिले-डुले —"मुझे उठाना पड़ेगा। कोई खास बात तो नहीं—. कन्धे में कहीं—शायद पैर में भी कुछ"—

हम लोग स्टैचर लेने दौड़े—इस बीच मेजर ने

कर्नल से कहा—"मैंने शत्रु के पाँच लड़ाके देखे—उन्हें रोकने चला गया जिसमें अड्डे की ओर न पहुँच पायें। जिस बीच मैंने उन्हें रोक रखा, हमारा काम बन चुका था—उनका हवाई अड्डा विध्वंस किया जा चुका था।'

मेजर उठाया गया। उसने घबराई निगाहों से इधर-उधर देखा। मैं समझ गया। भूमि से गुलूबन्द उठा कर उसके समीप स्ट्रेचर पर रख, मैंने उसका हाथ पकड़ लिया।

"मेजर अब लेटे-लेटे तुम्हें बहुत काम करना होगा'—मैंने धीरे से उसके कान में कहा—"नौ गाँठ और आठ वेणी बनाना।"

वह मेरी ओर इस प्रकार देखकर मुस्कराया जैसे कोई किसी बच्चे की बातों पर मुस्कराता हो—बोला—"नहीं जी! मैंने उन्हें कहाँ गिराया—मैंने तो सिर्फ एक लड़ाकू मार गिराया—एक वेणी बनाना होगा—मैंने पाँच में से एक ही को तो मार गिराया है"—

वह अस्पताल पहुँचाया गया—उस वीर को कुछ काल के लिए विश्राम मिला—उस रक्तरंजित नीले गुलूबन्द लपेटे हुए बीर को—जिसकी नस-नस में वह गुलूबन्द शत्रु के प्रति घोर घृणा और उद्दाम रोष की आग भड़का रहा था।

मनहूस कटरा

राय हुकुमचन्द जी बड़े मिलनसार और भले आदमी थे। उनकी आमदनी लगभग तीस हज़ार सालाने की थी। उसमें वे आनन्द से अपना काम चलाते थे। उनके दुर्भाग्य से उनके कंजूस (अपने ढंग के निराले) चचा का देहान्त हो गया और उनके भाग्य में उनकी सारी दौलत आ पड़ी, जिसकी आमदनी दो लाख के क़रीब थी।

अपनी सम्पत्ति के काग़ज़-पत्रों को देखते समय राय हुकुमचन्द जी को यह मालूम हुआ कि मच्छर-हट्टे में उनका एक भारी सा कटरा है, जो सन् १८५७ में पचीस हज़ार पर खरीदा गया था और अब उससे सिर्फ़ किराये की आमदनी, टैक्स वग़ैरः काट कर, सालाना पचीस हज़ार की होती है।

'यह तो बहुत है—बहुत ज़्यादा है', उदार राय साहब ने मन में सोचा, कि चचाजी तो बड़ी ज़्यादती करते थे। इतना किराया लेना तो बड़ी ज़्यादती है, इसमें संदेह नहीं। मुझ जैसे आदमी को, जिसका जनता में इतना आदर है, इस तरह लोगों को

लूटना शोभा नहीं देता। कल से मैं किराया कम किये देता हूँ। बेचारे किरायेदार भी एहसान मानेंगे।'

इस शुभ उद्देश से राय साहब ने तुरन्त उस मकान के गुमाश्ते को बुला भेजा। गुमाश्ता साहब कमर झुकाये आ पहुँचे।

"बशीर अहमद! भाई सुनो!" राय साहब ने कहा, "मेरी तरफ़ से जाओ और सब किरायेदारों से कह दो कि इस महीने से मैं उनका किराया एक तिहाई कम किये देता हूँ।"

'कम' करने का नाम सुनते ही बशीर चकरा उठा। उसने साफ़-साफ़ सुना ही नहीं। बात उसकी समझ में न आई।

"क—क—म करने को कहते हैं?" उसने हकलाकर कहा, "हुज़ूर बूढ़े से मज़ाक तो नहीं कर रहे हैं। कम! हुज़ूर का मतलब, जहाँ तक मैं समझता हूँ, बढ़ाने का है।"

"मज़ाक नहीं, बशीर! मैं ठीक कह रहा हूँ।" राय साहब ने तुरन्त उत्तर दिया, "मैंने यही कहा है कि किराया एक तिहाई कम कर दिया जाय।"

यह सुनकर गुमाश्ता एक-दम आश्चर्य से घबड़ा उठा। उसके होश-हवाश उड़ गये। वह आपे से बाहर हो गया और लगा कहने—"हुज़ूर ने अच्छी तरह ग़ौर नहीं किया। आपको पछताना पड़ेगा।

किराया—कम करना ! यह तो अनोखी बात है ! अगर किरायेदारों को मालूम हो जाय तो वे क्या कहेंगे ? पड़ोस के लोग आपको क्या समझेंगे ? बिला शक यही समझेंगे—"

"मुंशी बशीर अहमद सुनो भी," राय साहब ने बीच में टोक कर रुखाई से कहा, "जब मैं कोई हुक्म देता हूँ तो मैं चाहता हूँ कि उसके मुताबिक फ़ौरन काम हो। तुम्हारी समझ में आता है कुछ—जाओ।"

मतवाला-सा लड़खड़ाता हुआ बशीर मालिक के मकान से बाहर हुआ।

उसके होश-हवास ठिकाने न थे। कोई बात उस की समझ में न आती थी। वह स्वप्न देख रहा था। उसे क्या हो गया था, कुछ समझ में नहीं आता था। उसे इसमें संदेह हो रहा था कि वह सचमुच बशीर अहमद है या कोई और।

"किराया कम कर दो ! किराया कम कर दो !" वह बार-बार कहता था, "यह कोई मान सकता है ? हाँ, किरायेदारों ने कभी किराये के लिए कहा होता, किसी ने कभी किराये की शिकायत नहीं की। सब मज़े में देते आते हैं। उफ़! अगर उनके चचा को मालूम हो जाय तो वे क़ब्र में उछल पड़ें। हज़रत पागल हो गये हैं ! ज़रूर सनक गये हैं। किराया कम

कर देना। इलाक़ा ज़रूर कोर्ट कर लेना चाहिए। ये हज़रत तो साफ़ कर देंगे। ख़ुदा जाने आगे क्या करें। आज यह है, कल को क्या करें? जान पड़ता है सवेरे ही से ख़ूब चढ़ा ली है और नहीं तो—"

बेचारे बुड्ढे बशीर का चेहरा फ़क़ था। वह इतना परेशान था कि उसके घर में घुसते ही उसकी लड़की और बीबी चिल्ला उठीं, "अरे ख़ुदा! यह क्या! तुम्हें आज हो क्या गया है?"

"कुछ नहीं," उसने आवाज़ बदलते हुए कहा—"कुछ नहीं, बिलकुल कुछ नहीं।"

"तुम छिपा रहे हो," इसकी बीबी ने कहा—"तुम हम लोगों से छिपाते हो। कोई बात ज़रूर है। कहते क्यों नहीं? मैं तैयार हूँ सुनने के लिए। नये मालिक ने क्या कहा तुम से? क्या नौकरी से बर्ख़ास्त करना चाहते हैं?"

"अगर यही होता! लेकिन सोचो तो सही। उन्होंने ख़ुद अपने मुँह से—मुझसे—उफ़! तुम यक़ीन न करोगी।"

"अजी, ख़ुदा के लिए कुछ कहो भी तो।"

"अच्छा सुनो! हाँ, तो उन्होंने कहा—उनका हुकुम है कि मैं कह दूँ—सब किरायादारों से कि उनका किराया अगले माह से एक तिहाई कम किया

जाता है ! सुना कि नहीं? मैंने क्या कहा है ! किराया कम किया जाता है।"

किसी ने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया। वे दोनों—माँ-बेटी हँसी के मारे लोट रही थीं।

"कम किया जाता है," उन्होंने दुहराया, "वाह! क्या मज़ाक है। कैसी बेवकूफ़ी है! मकान का किराया कम कर दिया जाय—अरे जाओ भी!"

बशीर को क्रोध आ गया। वह इस पर बिगड़ उठा कि उसकी बात पर घरवाले भी विश्वास नहीं करते। उसकी औरत भी बिगड़ पड़ी, और लगे दोनों झगड़ने। उसकी बीबी चिल्लाकर कहती थी कि 'तुमने शराब के नशे में मालिक की बातें सुनी हैं।'

अगर लड़की बीच में न पड़ती तो दोनों में मार पीट की नौबत आ जाती। बशीर की बीबी ने भी चट अपने नौकर को मालिक के यहाँ भेज दिया और कहला भेजा कि उनका हुक्म मुनीम से लिखवा कर ले आना।

बात सच निकली।

वह भी दंग रह गई। शाम को तीनों माँ, बेटी और बाप सोचने लगे—नये मालिक के हुक्म की तामीली की जाय या उनके किसी रिश्तेदार से सिफ़ारिश की जाय कि उन्हें जाकर समझायें?

अन्त में उन्होंने हुक्म के मुताबिक काम करना ठीक समझा।

दूसरे दिन सवेरे बशीर बड़े ठाट-बाट से पचासों किरायेदारों को ख़ुशख़बरी सुनाने चला गया।

देखते देखते मच्छरहट्टे के कटरे में बड़ी हल-चल मच गई। सब लोग, यहाँ तक कि वे भी इकट्ठा हो गये जो चालीस वर्षों से उस कटरे में रहते आये थे, पर शायद ही कभी किसी से मिलते-जुलते हों।

आपस में बातें होने लगीं।

"आपने सुना, बाबू साहब ?"

"बड़े आश्चर्य की बात है !"

"बिलकुल अनहोनी !"

"मकान-मालिक ने किराया कम कर दिया।"

"एक तिहाई !—क्यों इतना ही न ? मेरा भी इतना ही कम हुआ है।"

"एकाएक यह रियायत ! कुछ भूल ज़रूर हुई है।"

बशीर ग़ुमाश्ते ने लाख कहा, उसके घरवालों ने लाख क़समें खाईं, समझाया, ख़त दिखाया, हुकुमनामा पेश किया, पर किसी को विश्वास ही न होता था। लोग हज़ार प्रमाणों के देने पर भी मानने को तैयार न थे। किसी को इस बात पर यक़ीन ही न आता था कि किराया घटा दिया गया है।

दो एक बाबुओं ने राय साहब तक को लिखा। उनसे पूछा कि बात क्या है। यह भी लिखा कि बशीर उनका गुमाश्ता बिलकुल सठिया गया है। मालिक-मकान ने उत्तर में लिखा कि बात सच है बशीर पागल नहीं हैं। वह ठीक कहता है।

अब किसी को संदेह का अवसर न रहा।

सब लोग टीका-टिप्पणी और कारण सोचने लगे।

"आखिर राय साहब ने किराया क्यों कम कर दिया?"

"हाँ जी, यही बात तो मैं भी सोच रहा हूँ।"

"बड़े विचित्र आदमी हैं! कुछ मतलब समझ में नहीं आता," सब ने कहा—"किराया कम करने का कोई भारी कारण ज़रूर होगा। समझदार आदमी हैं। कुछ पागल तो हैं नहीं! किसको मुफ़्त का मिला मिलाया धन काटता है? ऐसे वैसे कोई इतनी आमदनी छोड़ने पर जल्दी तैयार न होगा। कोई बात ज़रूर है। कुछ दाल में काला है। नहीं तो—"

सभी अपने मन में सोचने लगे—"कोई भेद है इसमें। लेकिन भेद क्या है?

सब के सब, इस कोने से उस कोने तक तर्क-वितर्क करने लगे। सभी किरायेदार इस पहेली को

सुलझाने की कोशिश करने लगे—सभी हैरान थे, मानों इसमें कोई बड़ी भेद की बात हो।

एक ब्राह्मण देवता ने तो यहाँ तक कह डाला—"मकान-मालिक ने ज़रूर कोई भारी पाप किया है। यह उसी का प्रायश्चित्त है।"

"यह बात तो ठीक नहीं। ऐसे दुष्ट की ज़मीन में रहना पाप है—कभी न रहे, चाहे जो कुछ हो। कौन जाने क्या कर बैठें। आज कम कर दिया है, कल बढ़ा दें तो—"

"नहीं जी! मकान अब शायद ख़राब हो चला हो?" एक ने उत्सुकता से पूछा।

"हो सकता है—कौन कह सकता है? पर यह तो सभी जानते हैं—यह काफ़ी पुराना हो गया है।"

"बस! बस! तभी तो पारसाल बरसात में इतनी मरम्मत हुई है।"

"उसकी छतें भी तो काफ़ी पुरानी हो चुकी हैं। क्या ठिकाना एक दिन ले दे के नीचे आ जायँ!"

"हो सकता है!"

"मुझे तो जान पड़ता है भूतों का आक्रमण इस पर होनेवाला है। रात को मुझे अकसर रोने-चिल्लाने और धमाधम कूदने की आवाज़ सुनाई पड़ी है—" पदारथ दूबे ने सुरती फाँकते हुए कहा।

"चुप भी रहो," बीमा कम्पनी के बाबू ने अपना

चश्मा रूमाल से साफ़ करते हुए कहा—"कटरे पर कुछ आफ़त आनेवाली है—किसी दिन आग-वाग लगवा देंगे राय साहब। उनका क्या—बीमा कम्पनी मरेगी।"

पर दुबे की बात लोगों को ज़्यादा जँची।

उपद्रव के समाचार सुनाई पड़ने लगे। किसी ने कहा—"आज मुझे विचित्र स्वप्न हुआ है।"

दूसरे ने कहा—"मैंने तो रात को एक अजीब, काली भयानक सूरत की औरत देखी है।"

बूढ़े मुकरजी ने कहा—"मुझे कल पाख़ाने में बूढ़े राय साहब दिखाई पड़े। उन्होंने मेरा हाथ तक पकड़ लिया। मैंने अच्छी तरह पहचानना चाहा—तो ग़ायब!"

जिसके मुँह से सुनिए एक न एक नई बात। कटरे के एक सिरे से दूसरे सिरे तक सब के मन में यही बात रह रह कर आती थी—"इसके भीतर कोई रहस्य है।"

पहले तरह तरह की बातें सुनाई पड़ीं। फिर लोगों को घबराहट होने लगी। अन्त में लोग डरने भी लगे।

आख़िर पदारथ दुबे अपने बाल-बच्चों को लेकर दूसरा डेरा खोजने पर तैयार हुआ। बशीर ने

मालिक को ख़बर दी। राय हुकुमचन्द ने हँसते हुए कहा—"जाने भी दो डरपोक ब्राह्मण को।"

दुबे के दोस्त करिया पाँड़े ने भी अपनी पान की दूकान वहाँ से उठा देने का निश्चय किया। उसके बाद उसके अफ़ीमची पड़ोसी मुकरजी ने भी उसका साथ दिया।

एक ने जाना तय किया, दूसरे ने भी उसका साथ दिया। अन्त में सभी, भागने को तैयार हो गये। भले आदमी भी धीरे धीरे खिसकने की सोचने लगे। बाबुओं में हिम्मत ही कितनी। सभी घबराने लगे, मानों कोई भारी विपत्ति आने वाली हो। दिन भर दफ़्तर में सिर खपाते—रात को डर के आँख लगने की नौबत न आती। लोगों ने चौकसी करनी ठानी। बारी-बारी एक दो पहरा देते। नौकरों ने हिम्मत छोड़ दी। तिगुनी तनख़ाह पर भी टिकने को तैयार न थे।

बशीर को पहचानना मुश्किल था। डर उसके दिल में पैठ गया था। वह कई दिन से ज्वर में पड़ा था।

उसकी बीबी सबको रोकती थी कि छोड़कर भागना तो ठीक नहीं हैं। पर कौन सुनता था।

महीने भर के भीतर सारा कटरा उजड़ गया। चारों तरफ़ 'किराये पर उठेगा' की तख़्तियाँ ही

तख़्तियाँ लटकती हुई दिखाई पड़ने लगीं। कोई भूला-भटका मकान की तलाश में कभी आ जाता तो बशीर अब कुछ चीं-चपड़ न करता। वह मुस्तैदी से लोगों को मकान और दूकानें दिखाता। कहता, "आप जो चाहें चुन लें। सभी ख़ाली हैं।"

लोग पूछ बैठते, "क्यों, ख़ाली क्यों पड़ी हैं ?"

बशीर कहता—"लोग छोड़कर चल गये। मुझे ख़ुद नहीं पता क्यों–पर चले गये। बात यह हुई थी–हाँ ! यही हुई थी—ऐसा कभी पहले न हुआ था—बात यह थी कि मालिक मकान ने किराया कम कर दिया था !"

आनेवाले भी इसे सुनकर कुछ सोचने लगते और फिर आने का नाम न लेते।

समूचा कटरा ख़ाली पड़ा रहा। एक एक कर सभी चले गये। चूहे तक कुछ खाने को न पाकर वहाँ से चलते बने।

सिर्फ़ बशीर और उसके घरवाले रह गये—डर से पीले और चिन्ता से मुर्झाये हुए। बूढ़े को रात में नींद न आती थी। रात भर उस भयानक आवाज़ें सुनाई पड़तीं, डर से उसके रोंगटे खड़े हो जाते। उसकी औरत रात भर पलक तक न मारती थी। उसकी लड़की भागकर अपने जल्लाद शौहर के यहाँ

चली गई। उसके पहले कभी वहाँ जाने की उसकी हिम्मत न होती थी।

अन्त में एक दिन बशीर को रात में बड़े बुरे स्वप्न दिखाई पड़े। वह सवेरे ही उठा और बड़ी हिम्मत कर राय साहब के यहाँ पहुँचा। उसने उन्हें धीरे से कटरे की कुंजियाँ सौंपीं और फिर सलाम कर वहाँ से चलता बना।

× × × ×

अभी तक मच्छरहट्टे में यह 'मनहूस-कटरा' उसी तरह खड़ा है। धूल उसके सुन्दर दरवाजों और खिड़कियों पर जमी पड़ी है। उसकी छतों पर घास उग रही है। अब उसके लिए कोई किरायेदार झाँकता भी नहीं। उसके आस-पास के मकानों तक में लोग रहते हुए डरते हैं। वे भी साल में नौ महीने खाली रहते हैं।

किराया कम करना! अब ऐसी अशुभ बात कौन सोचेगा !❀

❀एक फ्रेंच कहानी के आधार पर।

उस संध्या को !

रोज रात को बिस्तर पर जाने के पहले बच्चे बैठ कर बातें करते। अँगीठी को घेर कर वे बैठते, और जो कुछ उनके मन में आता कहते-सुनते। धूमिल खिड़कियों से गोधूली का मन्द प्रकाश अपनी स्वप्नभरी आँखों से उन्हें झाँका करता। कमरे के प्रत्येक कोने से मूक छाया काँपती हुई ऊपर उठती—अद्भुत कथानकों की प्रेरणा लिए हुए।

जो कुछ उनके मस्तिष्क में आता उसी पर वे बातें करते—और उनकी कल्पना में आतीं थीं केवल केवल सुखद कहानियाँ—प्रकाश और उल्लास की भूमिका में लिपटी हुई, प्रेम और आशा-भरी कथाएँ। सम्पूर्ण भविष्य उनके लिए एक दीर्घ महोत्सव था जिसमें न कहीं कोई कमी थी—न दुख की किंचित रेखा। फूलदार परदे के पीछे, कहीं पर, साक्षात् उल्लास आँखें मुलकाता, स्पन्दनशील, ज्ञात को ज्ञात में उँड़ेलता रहता। फुसफुसाहट, अव्यक्त, और सिर हिलाना। उनकी बातों के सिर-पैर न होते—उनकी कहानी का उद्देश्य न होता। कभी-कभी चारों एक साथ बोल उठते—पर सभी एक दूसरे की बातें

समझ लेते। सब की आँखें गोधूली की स्वर्गीय सुषमा को देखने में टिक जातीं—सुषमा, जिसमें सब व्यक्त था—सत्य था—जिसमें प्रत्येक कहानी साकार थी—प्रत्येक कथानक का शानदार अंत था।

बच्चे आपस में इतना मिलते-जुलते थे कि संध्या के मन्द प्रकाश में सबसे छोटे के चेहरे का सबसे बड़े से पृथक् करना दुष्कर होता था—चार बरस के लड़के को उसकी दस वर्षीया बहन से विभेद करना कठिन होता था। सब के चेहरे पतले, लंबे, दुबले, बड़ी-बड़ी आँखों वाले—जिज्ञासा भरी आँखों वाले—थे।

उस सन्ध्या को न जाने, क्या, न जाने कहाँ से आकर, उस स्वर्गीय आनन्द में आ पड़ा था और उसने अपने निर्दय हाथों से उनकी चहल-पहल, उनकी बकवास, उनकी कहानियों को तितर-बितर कर दिया था। डाक से समाचार आया था कि बच्चों का पिता रणक्षेत्र में खेत रहा! एक अज्ञात वस्तु, सर्वथा अपरिचित, सर्वथा अग्राह्य उनके सम्मुख आ गयी थी; और वह भारी-भरकम उनके सामने खड़ी थी—पर न उसके सिर था, न आँखें, न मुख। उसका पता-ठिकाना भी न था—कम-से-कम उन बच्चों के देखे हुए चहल-पहल और उल्लास भरे संसार में उसका कहीं पता न था—न रविवार के

दिन मन्दिरों के समारोह में, न हाट-बाज़ार के जन-संकुल और भीड़-भड़क्के में, न अँगीठी को घेरे हुए गोधूली की पीत आभा में और न उनकी मधुर कहानियों में ही।

उसमें कुछ भी आल्हादकारी न था—पर कोई ऐसी दुखप्रद बात भी न थी—क्योंकि वह निर्जीव था—न उसको आँखें थीं जिन्हें देख उसका परिचय मिल सकता, और न उसके मुख था कि वह अपना परिचय स्वयं दे सकता। उस विशाल अव्यक्त के सामने उन बच्चों की बुद्धि हताश और भयातुर होकर खड़ी थी मानो वे किसी काले अचल पहाड़ के सामने बेबस खड़े हों। उनकी बुद्धि उस काले पहाड़ के समीप जाती, आँखें फाड़कर उसे देखती और अवाक् हो देखती हुई रह जाती।

"कब लौटेंगे?"—सबसे छोटे लड़के ने प्रश्न किया।

उसकी बड़ी बहन ने क्रोध से घूरते हुए कहा—"खेत रहा आदमी भी कभी लौटा है!"

सब सन्नाटे में आ गये। उसके सामने वही दुर्गम—काला पहाड़ आ खड़ा हुआ जिसके उस पार वे कुछ न देख पाते थे।

"मैं भी रणभूमि पर जाऊँगा—एकाएक सात वर्ष के एक लड़के ने निश्चयात्मक स्वर में कह डाला

—जैसे उसने ठिकाने की बात सोच डाली हो; और यही कहना उस समय उचित भी था।

"कहीं बच्चे रणभूमि पर जाते हैं ?"—उसके चार वर्ष के छोटे भाई ने झिड़क कर कहा—गंभीर स्वर में।

उनमें से सबसे दुबली, मिरकिट, जो अपनी माँ की चादर लपेटे थी—वह लड़की किसी कोने से अँधेरे में से बोल उठी—"रणक्षेत्र क्या होता है, भय्या, ज़रा बताना तो।"

उसका युद्धप्रिय भाई बतलाने लगा—"युद्ध-क्षेत्र—युद्धक्षेत्र ? मैं बतलाऊँ—उसमें लोग छुरा भोंकते हैं, तलवार से मारते हैं, बन्दूक़ से गोली मार देते हैं। जितना ही मारो-काटो—उतना ही अच्छा। कोई कुछ रोक-टोक करने वाला नहीं—वह तो युद्ध है—उसमें यह सब होता ही है। यही रणक्षेत्र में होता है।"

उसके रोगी बहन ने पूछा, "पर काहे को लोग एक दूसरे को मारते-काटते हैं—भय्या !"

"सम्राट के लिए !" उसके भाई ने उत्तर दिया—और सब गुमसुम हो गये।

उनकी अलसाई आँखों के सामने कुछ दूर पर धुँधले प्रकाश में किसी महान् शक्तिशाली, तेजस्वी, प्रभापूर्ण वस्तु का उदय हुआ। वे निश्चल बैठे रहे—साँस रोके—मानो वे आतंकित हो उठे हों।

फिर उस युद्ध पर जाने वाले बालक ने शान्ति भंग की—मानो वह घोर सन्नाटा उसे असह्य हो उठा हो। वह बोला—

"मैं भी रणक्षेत्र पर जाऊँगा—शत्रु से लड़ने।"

"शत्रु कैसा होता है? उसके सींग होते होंगे?" —उसकी रोगी बहन ने फिर पूछा।

"हाँ ज़रूर होते हैं—नहीं तो वह शत्रु कैसा?" —गंभीर होकर—क्रोध से डपट कर उसके भाई ने व्यंग में कहा।

उसकी बहन और भी उलझन में पड़ गयी। उसने फिर धीरे से कहा—"सींग क्या होते होंगे—!" और वह अभी दुविधे में थी।

"सींग क्यों होंगे? वह भी तो हमारे जैसा मनुष्य है"—बड़ी बहन ने बेमन से कहा। फिर कुछ सोचकर वह बोली—"मनुष्य ही है हमारा शत्रु भी, पर उसके आत्मा नहीं होती।"

बहुत देर चुप रह कर उसके छोटे भाई ने फिर पूछा, "पर रणक्षेत्र में लोग खेत कैसे रहते हैं?—ऐसे—गिर पड़ते होंगे?"—और उसने पीठ के बल गिर कर दिखा दिया।

उसके युद्ध-प्रिय भाई ने समझाया—बड़ी शान से—"लोग उसे मार डालते हैं!"

"पापा हमारे लिए बन्दूक़ लावेंगे!"

"अब क्या लावेंगे—वे तो खेत रह"—उसकी बड़ी बहन ने डपट कर टोका।

"वे मारे गये—मर गये ?"

"हाँ ? मर गये !"

उन बच्चों की विस्फारित आँखों से नीरवता, वेदना, अंधकार में झाँकने लगी—किसी अगम्य, अगोचर—अग्राह्य को समझने की चेष्टा करने लगी।

उसी सन्ध्या को घर के बाहर उनके दादा-दादी एक बेंच पर बैठे हुए थे। सन्ध्या की विलीन होती हुई लालिमा वाटिका के वृक्षों की घनी पत्तियों को रक्त-रञ्जित बना रही थी। उस सन्ध्या की घोर नीरवता को केवल किसी का रह-रह कर सिसकना भंग करता था—जो कदाचित पशु-बाड़े की ओर से आ रहा था। संभवतः वह उन बच्चों की माँ का रुँधा हुआ रुदन था जो पशुओं को सानी-पानी करने गयी थी और एकान्त में अपने को रोक न सकी थी। और वे दोनों बुड्ढे-बुड्ढी सिर झुकाये बैठे थे—पास-पास, सटकर—एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए। शायद बहुत दिनों बाद वे इस प्रकार एक दूसरे का हाथ पकड़ कर बैठे थे। और—आँसूविहीन आँखों से वे देख रहे थे—दिवस का अवसान—निर्निमेष—निस्पन्द—निश्चल—मूक !❀

❀एक स्लावेनियन कहानी का रूपान्तर।

हत्यारा

गाँव के अन्तिम सिरे पर की बात है। एकाएक एक मकान की खिड़की खुली। एक आदमी दिखाई पड़ा। उसके चेहरे का रङ्ग चढ़ता-उतरता था, उसकी आँखें भयानक दीखती थीं। उसके होंठ व्याकुलता से काँप उठते थे। दाहने हाथ में वह एक छुरा लिये था, जिससे ताज़ा ख़ून बूँद-बूँद करके चू रहा था। उसने चारों ओर देखा—सन्नाटा था। वह धम से खिड़की से भूमि पर कूद पड़ा और खेतों से होकर भाग चला।

लगभग पंद्रह मिनट के बाद वह बड़ी सड़क से बीस क़दम पर जङ्गल के किनारे रुका—थकावट से चूर—बेदम। उसने सबसे घना—सबसे निराला स्थान जङ्गल में ढूँढ़ा और उसी में घुस पड़ा। उसे काँटों की परवा न थी, जो उसके कपड़ों को चिथड़े-चिथड़े कर रहे थे। वह भीतर पहुँचा और छुरे से भूमि खोदने लगा। उसने ज़मीन क़रीब एक फ़ुट खोदी और उसमें उसने छुरा छिपा दिया—ऊपर से मिट्टी डाल दी—घास और पत्तियों से उसे ढँक दिया। फिर वह हरी-हरी घास पर जा बैठा।

वह कान लगाकर सुन रहा था। चारों ओर सन्नाटा था। उसके मन में भय उत्पन्न होने लगा। यह वह समय था, जिसे न रात कह सकते हैं, न दिन। पौ फट रही थी। सारी वस्तुएँ उसे भूत की भाँति दिखाई पड़ती थीं।

इस मूक अन्धकारमय प्रकृति के बीच उसे ऐसा जान पड़ा, मानो वह श्मशान में बैठा हो। एकाएक कुछ सुन कर वह चौंक पड़ा। यह सड़क पर जाने-वाली गाड़ी के धुरे की 'चूँ' 'चूँ' थी। गाड़ी काफी दूर पर थी पर सन्नाटे में उसकी विचित्र आवाज़ साफ़-साफ़ सुनाई पड़ती थी।

प्रकृति धीरे-धीरे जगी। चिड़ियाँ भी उठ गईं। चारों ओर उनका चहचहाना और फुदकना सुनाई पड़ने लगा। जान पड़ता था, मानो सूर्य्यदेव के स्वा-गत में सब राग आलाप रही हैं।

धीरे-धीरे प्रकृति ने अन्धकार का आवरण हटाया—उसकी पवित्र सुन्दरता चारों ओर दिखाई पड़ने लगी। शोभा और सजीवता ही सारे वन में दिखाई पड़ती थी। वृक्षों के शिखरों पर कुहरे की नीली रेखा अभी तक छाई थी। सर्वत्र शान्ति विराज रही थी। दूर मैदान में सन्नाटा ही सन्नाटा था। उसका छोर दूर आकाश को छूता हुआ दिखाई

पड़ता था। नीले स्वच्छ आकाश के प्रतिबिम्ब के कारण उसका मटमैला रङ्ग विवर्ण हो रहा था।

हत्यारा उठा। उसका शरीर काँप उठा। उसके दाँत कटकटा उठे।

वह चोर की भाँति इधर-उधर देखने लगा। धीरे से डालियों को हटाता, रुकता, डरता, ज़रा सी आवाज़ पर पीछे दुबकता हुआ वह आगे बढ़ा। अन्त में वह उस घने अन्धकारमय वन-प्रदेश से बाहर निकला, जहाँ उसने अपना छुरा छिपाया था।

वह और भी जङ्गल के भीतर घुसा। बीच-बीच में वह रुकता, कान लगाकर सुनता और पीछे मुड़-कर देखता जाता था। इसी प्रकार वह दिन भर चलता रहा, उसे थकावट तक न मालूम पड़ी—उसकी परेशानी ऐसी बढ़ी-चढ़ी थी।

वह रुका—जाकर एक बरगद के पेड़ के नीचे, जिसकी असंख्य जड़ें असंख्य स्तम्भों की भाँति खड़ी थीं। वे चिकनी और सफ़ेद थीं। दिन की शान्ति, और निर्जनता के कारण वह स्थान बड़ा रमणीक था, पर उन निर्जीव डालियों के बीच भी उसे कुछ चलता हुआ जान पड़ता था—उस शान्ति में भी उसे स्फुट रहस्यमय भयानक शब्द सुनाई पड़ते थे।

उस भगोड़े को वहाँ भी शान्ति न मिली। वह साँपों की भाँति पेट के बल रेंगकर एक काँटेदार

झाड़ी के भीतर जा छिपा। यहाँ आकर उसे कुछ धीरज मिला।

उसने अपना हाथ सिर पर रखा और फिर पेट पर। वह बड़बड़ाने लगा—"मुझे तो भूख लगी है।"

वह अपनी ही आवाज़ सुनकर चौंक पड़ा—काँप उठा। हत्या के बाद उसने पहले-पहल इसे सुना था। वह उसके कानों में गूँज उठी, जैसे कोई भयानक शब्द हो। कुछ क्षण के लिए वह एकदम स्थिर हो गया। उसकी साँस रुक गई। उसे डर था, कहीं कोई सुन न ले।

जब उसका जी कुछ ठिकाने हुआ, तो वह अपनी जेब टटोलने लगा। उसमें रोटी के दो एक टुकड़े थे। "इतना काफ़ी होगा" उसने धीरे से कहा—"छः घण्टे में तो मैं सरहद के पार हुआ जाता हूँ। तब जो चाहूँगा, सो करूँगा। फिर कोई डर नहीं है।"

घण्टे-भर बाद उसे ऐसा जान पड़ने लगा, मानो सर्दी से उसका शरीर अकड़ रहा है। रात बीत चली थी, ओस पड़ने लगी थी। उसके तन पर सिर्फ़ मामूली कपड़े थे। वह उठ बैठा और धीरे से झाड़ी से निकलकर चलने लगा। पौ फटते-फटते वह रुक गया। वह जङ्गल पार कर चुका था। अब उसे खुले मैदान में चलना था। दिन निकलने ही वाला था।

यह सब सोच कर उसकी बढ़ने की हिम्मत न होती थी।

वह झाड़ में छिपा खड़ा था। उसे घोड़ों की टाप सुनाई पड़ी। वह भय से पीछे हट गया।

"दौड़ आ पहुँची"—उसने हाँफते हाँफते कहा और वह ज़मीन से चिपक गया।

बात कुछ न थी, एक गाड़ी चली जा रही थी। कोचवान गाता हुआ अपना कोड़ा फटकार रहा था।

"रहमान!" किसी ने पुकारा।

"कौन हमीद? इतने सबेरे कहाँ चले।"

"अरे! कहीं नहीं। लादी लेकर नदी पर जा रहा हूँ।"

हत्यारा उसे जब तक देखता रहा, जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गया। तब उस मुँह से एक आह निकल गई और वह मैदान की ओर देखने लगा।

"अब मुझे चल देना चाहिए," वह बड़बड़ाने लगा "पूरे चौबीस घण्टे हो गये जब मैंने··· । सब बात ज़ाहिर हो गई होगी। लोग मुझे ढूँढ़ते होंगे। अब घण्टे भर की देर हुई, और मैं कहीं का न रहूँगा।"

उसने ढाढ़स बाँधा और जङ्गल से बाहर हुआ। थोड़ी दूर चलने पर उसे गाँव दिखाई पड़ने लगा।

उसकी चाल धीमी हो गई, उसके मन में हज़ारों तरह के विचार आने लगे। भूख उसे गाँव की ओर ले जा रही थी—भय उसे ऐसा करने से रोक रहा था।

इसी सोच विचार में वह गाँव के सीवान तक पहुँच गया। थोड़ा और आगे बढ़ा और गाँव में घुसने ही को था कि उसे कुछ चमकता हुआ नज़र आया। यह गाँव के चौकीदार की चपरास थी। वह इसी ओर आ रहा था।

"अगर कहीं उसके पास मेरी हुलिया हो।" उसने मन-ही-मन सोचा और काँप उठा। एकाएक पीछे लौटकर वह भागा—पास के जङ्गल की ओर। और वहाँ जाकर छिप रहा। धीरे-धीरे वह डर से और भीतर घुसता गया—उसकी भूख-प्यास न-जाने कहाँ हवा हो गई थी। रह-रह कर उसे चौकीदार का ध्यान आता था। वह उससे और गाँव से बचना चाहता था।

परन्तु वह थोड़ी देर में जंगल के पास पहुँच गया। उसके आगे फिर वही मैदान, जिसमें कहीं छिपने का ठिकाना नहीं।

उसने डालियों के बीच से देखा। उसे कोई घास पर बैठा हुआ खाना खाता दिखाई पड़ा। यह रहमान कोचवान था।

रहमान जहाँ बैठा रोटी खा रहा था वह स्थान बड़ा ही रमणीक था। नाले के बीच पत्थर पर वह बैठा था। पानी के चारों ओर फूल खिले थे। इधर-उधर वृक्षों की रंग-बिरंगी पत्तियों के ढेर लगे थे। ऊपर नई कोपलों से लदी डालियाँ झूल रही थीं। घनी छाया थी—अच्छी सुहावनी। नाले के ऊपर नये जुते हुए खेतों का विस्तार था।

रहमान अपनी मोटी-मोटी रोटियाँ और थोड़ा सा सालन लेकर खाने बैठा था। उसके चमकते हुए दाँत मोटी रोटी में कसकर बैठ जाते थे, जिससे उसकी भूख का अन्दाज़ होता था। वह तन्मय होकर खा रहा था। बीच-बीच में अपने घोड़ों को पुचकारता जाता था। वे दोनों पास ही हरी-हरी घास चर रहे थे।

"वह सुखी है—वह मज़े में है!" हत्यारा मन में कहने लगा। फिर उसकी आत्मा कहने लगी—"और क्या? मेहनत करना! बाल-बच्चों से प्रेम रखना—सुख और शान्ति इसी में है!"

उसके जी में आया कि रहमान के पास चलूँ और उससे खाने को माँगूँ, पर अपने फटे-फटाये कपड़ों को देखकर उसकी हिम्मत सामने जाने की न हुई। उसे ऐसा जान पड़ा मानो उसकी सूरत हत्या

की गवाही दे रही है—मानो हर चीज उसे धिक्कार रही है।

आहट सुनकर उसने पीछे मुड़कर देखा—चिथड़े लपेटे एक बूढ़ा आ रहा था। उसकी कमर झुकी थी। लाठी के बल वह आहिस्ता-आहिस्ता चल रहा था। वह फ़क़ीर था।

हत्यारा उसे ईर्ष्या की दृष्टि से देखने लगा और मन में बड़बड़ाने लगा।

"मैं फ़क़ीर ही होता तो अच्छा था! भीख माँगता—पर निडर तो रहता! जहाँ जी में आता मजे से आता-जाता। चित्त में शान्ति होती, आत्मा में संतोष। जो कुछ मिलता, सुख से खाता-पीता। न पुलिस का डर रहता, न हत्या का पाप, न सूली का भय। वाह! फ़क़ीर ही मज़े में है। मुझसे तो लाखों दर्जे अच्छा।"

एकाएक उसका चेहरा पीला पड़ गया, वह काँपने लगा, उसके हाथ-पैर फूल गये।

"वे सब आ पहुँचे!" उसने लड़खड़ाती हुई जबान में कहा। उसकी दृष्टि सड़क पर लगी थी।

भयातुर आँखों से वह चारों ओर देखने लगा। शरण ढूँढ़ने लगा। डर के मारे उसे कुछ न सूझता था। उसकी बुद्धि कुछ काम न करती थी।

पुलिसवाले पास आ रहे थे। घोड़ों की टाप

और हथियारों की झनझनाहट सुनकर वह चैतन्य हो उठा। सामने इमली का घना पेड़ देखकर वह गिलहरी की तरह उस पर चढ़ गया।

वह अब सुरक्षित स्थान में था। पुलीसवाले पास ही दम लेने के लिए ठहरे। वह सुन रहा था। निश्चल, भयभीत। उसका मन भयानक भावों का शिकार था—उसका दिल ज़ोरों से धड़क रहा था।

"इस जङ्गल में भी ढूँढ़ा जाय, तो क्या हर्ज़ है?" एक सिपाही ने कहा।

"यह तो बहुत ही छोटा है," दूसरे ने कहा—"इन दस पेड़ों में वह थोड़े ही छिपनेवाला है। उसने जङ्गल धर लिया होगा।"

"कुछ भी सही! देख लेने में क्या हर्ज़ है।"

"नहीं जी!" उसने साथी से कहा—"फ़जूल वक्त गँवाना है। ख़ूनी यों ही हमसे दस घण्टे आगे चल चुका है।"—और वे आगे सरपट बढ़े।

हत्यारे की जान में जान आई। मानो उसने नई ज़िन्दगी पाई हो। परन्तु ज्यों ही वह ज़रा निश्चिन्त हुआ, ज़रा सा उसे डर से छुटकारा मिला, उसे दूसरी बला ने आ घेरा। वह चिल्ला उठा—"उफ़! भूख से मेरी जान निकली जा रही है।"

उसने अड़तालीस घण्टों से कुछ खाया पिया न था। उसके पैर लड़खड़ाने लगे, सिर चकराने लगा।

उसके कान सनसनाने लगे। फिर भी उसकी हिम्मत गाँव तक जाने की न होती थी। पुलीस, सूली—ये दो शब्द बार-बार उसके ध्यान में आ जाते थे। उसकी भूख इनके सामने हवा हो जाती थी।

उसके कान सजग होकर हर आहट को सुनने में लगे थे। दूर मन्दिर के घण्टे की आवाज़ सुनकर वह चौंक पड़ा। पूजा हो रही है। हत्यारा सुनने लगा। भय से विह्वल, सिर नीचे किये, घण्टे की हर चोट पर काँपता हुआ, मानो उसी के हृदय पर चोट पड़ रही हो। उसकी आँखों से बड़ी-बड़ी बूँदें टपकने लगीं। उसे पता न था। उसने उन्हें रोकने की चेष्टा भी न की।

घण्टे की आवाज़ ने उसकी कल्पना में अति भीषण, अति करुण चित्र उपस्थित कर दिया था।

"ओह! अभागा! मैं बड़ा अभागा हूँ!" उसने आह भर कर कहा और उसने अपने हाथों से अपना मुँह ढँक लिया।

वह फिर घण्टे की आवाज़ सुनने लगा। घण्टे की ध्वनि ने उसकी स्मृति को सचेत कर दिया था। वह मन में कहने लगा—"ओह! बेकारी! इसी के कारण मैं शराब पीने लगा। ओह! शराब! इसने क्या गुल खिलाया? तीन अनाथ बच्चे—बेचारी औरत मरी पड़ी है। और मैं—शैतान, पिशाच—

पाजी—दुनिया की नज़रों से गिरा हुआ—पशु की भाँति जान बचाता फिरता हूँ जिसे लोग दम मारने तक की फुरसत नहीं देते। ओह! वे बिना मुझे फाँसी पर लटकाये न छोड़ेंगे। फाँसी—ओह! बड़ी भीषण वस्तु है। पर नहीं, यह तो इस अपराध के लिए साधारण दण्ड है।"

वह रात आने तक उसी पेड़ पर छिपा बैठा रहा। जब उसे तारे दिखाई पड़ने लगे, जब उसे चारों ओर सिवा अपनी साँस के और कोई शब्द न सुनाई पड़ा, तब उसे उस पेड़ से उतरने की हिम्मत हुई।

दो-एक घण्टे बाद उसकी भूख की तेज़ी ने उसके भय पर विजय पाई और अपनी बुद्धि लुप्त होते देख वह गाँव में भोजन के लिए जाने पर तैयार हुआ।

उसने अपने कपड़े झाड़ डाले, अपना मुँह पोंछ डाला, और जान-बूझ कर बाहर मैदान में निकल पड़ा। पाँच मिनट में वह गाँव में दाखिल हुआ। वह चल रहा था। धीरे-धीरे, सिर झुकाये, मानो थक गया हो। घबराई आँखों से वह अपने दाहिने बाएँ देखता जाता था, कि कहीं ज़रा भी खटका हो और मैं नौ-दो ग्यारह हो जाऊँ।

गिरजे के पास ही, जो गाँव के बीच में था, उसे एक नानबाई की दूकान दिखाई पड़ी। उसने कान

लगाकर सुना—कोई आवाज़ न आती थी। ज़ाहिर था कि वह ख़ाली थी। वह भीतर घुसा।

"भाई क्या दूँ ?" मालिक दूकान ने पूछा। वह तगड़ा, साफ़ तबीयत का आदमी था।

"रोटी और सालन !" हत्यारे ने कहा और खिड़की के पास मेज़ पर जा बैठा।

तुरन्त उसकी आज्ञा का पालन हुआ।

"यह लीजिए !" दूकानदार ने कहा—"रोटी सालन और पनीर।"

"मैंने तो रोटी-सालन ही माँगा था।" हत्यारे ने कहा और उसने आस्तीन से मुँह ढक लिया।

"अजी ! यह बात नहीं है आप जो चाहे लें; पर बुरा न मानिए, आपकी तबीयत अच्छी नहीं दिखाई पड़ती। आपको पुष्ट भोजन की ज़रूरत है। यह लीजिए मज़े में खा लीजिए। कोई चिन्ता की बात नहीं है।"

"अच्छा ! अच्छा !"

वह अभी खा ही रहा था, कि लोग आ पहुँचे। सारी दूकान भर गई। हत्यारा खाने लगा। वह अपना मुँह खिड़की की ओर किये हुए था जिसमें उसे कोई पहचान न सके।

पन्द्रह मिनट मुश्किल से बीते। हत्यारे के लिए बड़ी परेशानी और चिन्ता का समय था। वह बात-

बात पर घबरा उठता, उसका चेहरा पीला पड़ जाता और वह काँप उठता। आखिर वह उठकर चलने पर तैयार हुआ कि एक ने चिल्लाकर कहा—“यह तो हमारे थानेदार साहब आ रहे हैं।”

हत्यारा एकाएक चौंक पड़ा। उसका दाहिना हाथ सिर पर जा पड़ा—उसके प्राण सूख गये, मानो उसे काठ मार गया हो।

धीरे-धीरे उसे होश हुआ; पर उसके हाथ-पैर काम न करते। वह डर से बेबस हो रहा था।

थानेदार को आते देख वह मेज़ पर झुक गया और सोने का बहाना करने लगा।

थानेदार को सभी मानते थे। सब उठकर उसे कुर्सी देने लगे और अपने साथ खाने को बुलाने लगे।

“धन्यवाद !” थानेदार ने कहा—“आप लोगों की दावत क़बूल है; पर इस समय मैं जल्दी में हूँ ज़्यादा देर तक नहीं बैठ सकता, ज़रूरी काम है।”

“ज़रूरी काम ? आज रविवार को तो ख़ुदा भी आराम करता है—तुम्हें क्या आफ़त है ?”

“हाँ, ख़ुदा करता होगा, पर हमको वह मयस्सर नहीं। हमें तो हर वक़्त हत्यारों की खोज में रहना पड़ता है।”

“हत्यारे की खोज में ? कहिए ख़ैर तो है ?”

"क्या आपने वारदात नहीं सुनी ?"

"अच्छा, सुनिए, मैं कहना ही चाहता था। आप लोग उस ख़ूनी की हुलिया तो सुन लीजिए—हम लोग उसी को ढूँढ़ रहे हैं।"

हत्यारे का दिल ऐसा ज़ोर से धड़क रहा था, मानो वह बाहर निकल पड़ेगा।

"वह संगतराश है।" थानेदार ने कहा।

"और हत्या किसकी की है ?"

"अपनी औरत की।"

"चाण्डाल! उस बेचारी ने क्या किया था उसका ?"

"मार खाने पर रोने लगती थी। कभी-कभी उससे लड़के-बालों के लिए ख़र्च माँगती थी। उससे उनका भूखों मरना नहीं देखा जाता था। बस, यही उसका अपराध था। बेचारी इसी लिए बृहस्पति की रात को अपनी जान खो बैठी। उसकी उमर ही क्या थी। पच्चीस वर्ष! उस दुष्ट को तो उसका तलवा चाटना चाहिए था। बेचारी रात-दिन काम करती थी। लड़कों को देखती, घर देखती, इसी का बदला उसे मिला!"

"नारकीय! चाण्डाल!" कह कर एक युवा ने जोश में मेज़ पर एक घूसा जमा दिया और लगा

कहने—"उसका सिर धड़ से अलग कर दिया जाय तो मुझे .खुशी हो।"

"इसी से तो उसकी हुलिया कह रहा हूँ कि कहीं पा जायँ तो आप लोग उसे पुलीस के हवाले कर दें। वह ज़रूर यहीं कहीं आस-पास छिपा होगा। हम लोगों का यही विश्वास है।"

सब सन्नाटे में थे।

हत्यारे ने भी सुना—अमानुषिक प्रयत्न से वह अपनी घबराहट छिपा रहा था। उसका सिर चकरा रहा था।

"उसकी हुलिया यह है," थानेदार ने एक काग़ज़ जेब से निकाल कर पढ़ते हुए कहा—"मझोला क़द, छोटी गरदन, चौड़े कंधे, गाल की हड्डियाँ उठी हुईं, लम्बी नाक, काली आँखें, खसखसी दाढ़ी, पतले होंठ, पेशानी पर एक तिल।"

काग़ज़ मोड़ते हुए उसने कहा—"अब आप लोग उसे मज़े में पहचान लेंगे।"

"अब तो कोई कठिनाई नहीं दीखती!" एक ने कहा।

"अच्छा अब चलता हूँ—अपने शिकार की फिराक़ में। आदाब।"

हत्यारे ने साँस खींच ली। थानेदार का जाना सुनकर वह सोचने लगा, "अब क्या है—सीमा पार

करने में दो-एक घण्टे की देर है।" वह अपने को 'बच गया' समझने लगा।

वह अपना सिर उठाने ही को था कि उसे थानेदार के भारी बूट-जूतों की चरमर अपनी ओर आती सुनाई पड़ी।

थानेदार रुक गया और हत्यारे को ऐसा जान पड़ा, मानो वह उसी को देख रहा हो।

उसके शरीर में काटो तो ख़ून नहीं। वह पसीने-पसीने हो गया। उसका दिल मानो धड़कना बन्द कर देगा।

"इधर देखिए," थानेदार ने कहा—"इधर एक साहब सोने में मस्त हैं"—और उसने उसके कंधे पर हाथ रख दिया।

"अरे भाई! जरा सिर तो ऊपर उठाओ। तुम्हारा मुँह तो देखें!"

हत्यारे ने जल्दी से अपना सिर ऊपर उठाया। उसके चेहरे से भय टपकता था। उसका चेहरा सूखा हुआ और विकृत था। उसकी लाल-लाल आँखों से अंगारे निकल रहे थे। उसके होंठ डर से काँप रहे थे।

"यह तो वही है!" सब लोग एक साथ चिल्ला उठे।

थानेदार ने उसकी गरदन पकड़ने के लिए हाथ

बढ़ाया, पर इसके पहले ही हत्यारे ने उसकी आँखों पर दो घूसे कसकर ऐसे जमा दिये कि थानेदार चौंधिया गया। और वह उचक कर खिड़की के रास्ते बाहर बाग़ में हो रहा और बात-की-बात में वह झाड़ी में अदृश्य हो गया।

उसकी फुरती से सँभलकर सब लोग उसके पीछे दौड़ पड़े। एक छलाँग में वह झाड़ी पार हुआ, दम के दम में उसने खेतों को पार किया और दस मिनट में वह गाँव से मील-भर दूर निकल गया।

ऊँची-नीची ज़मीन देखकर अपने को अदृश्य समझ कर वह क्षण भर के लिए दम लेने को रुका। वह बहुत ही थक गया था। अगर कुछ देर और दौड़ना पड़ता, तो वह बेहोश होकर वहीं गिर पड़ता।

वह बैठा ही था कि उसे हल्ला-गुल्ला सुनाई पड़ने लगा। वह उठकर सुनने लगा।

लोग उसके पीछे-पीछे ढूँढ़ते आ रहे थे।

अब वह क्या करे? थका-माँदा-बेदम। अब वह दौड़ न सकता था। लोग उसके पास आ पहुँचे थे। वह निराश होकर चारों ओर देखने लगा। हर ओर उसे मैदान ही मैदान दिखाई पड़ता था। न कहीं नीची ज़मीन थी, न कहीं पेड़ या झाड़ी। एकाएक उसकी नज़र एक पानी से भरे गड्ढे पर पड़ी

जिसके चारों ओर ऊँची-ऊँची घास उग रही थी।

उसकी जान में जान आई।

"आओ इसी में—"

वह किसी तरह उस गड्ढे तक पहुँचा और गले तक पानी में धँस पड़ा। सिर पर उसने घास और उसकी पत्तियाँ रख लीं। वह निश्चल खड़ा हो गया, मानों कोई निर्जीव लट्ठा हो।

जब लोग उसके पास पहुँचे, पानी स्थिर और साफ़ हो गया था। आगे आगे थानेदार था। दूकान-वाले के प्रयत्न से उसे जल्दी होश आ गया था।

"अब?" थानेदार ने घोड़े पर से चारों ओर देखकर कहा—"आखिर बदमाश कहाँ गया?

"बड़ी विचित्र बात है," एक जवान किसान ने कहा—"अभी मुझे साफ़ दिखाई पड़ रहा था और अब एकाएक ग़ायब! चारों ओर मैदान ही मैदान है। चूहे का एक बिल तक कहीं नहीं है कि उसमें समा सके।"

"कहीं दूर नहीं गया होगा," थानेदार ने कहा—"हम लोग दोनों तरफ़ से खोजते हुए चलें और फिर आकर यहीं मिलें।"

हत्यारे ने उन्हें जाते हुए सुना। वे तरह-तरह की धमकियाँ दे रहे थे।

उस गड्ढे के पानी में खड़ा हुआ वह स्थिर था,

पर उसका अङ्ग-अङ्ग काँप रहा था। उसकी हिलने की हिम्मत न होती थी कि कहीं लोगों को पता न लग जाय। लगभग एक घण्टे तक वह इसी भाँति खड़ा लोगों की आहट लेता रहा। थोड़ी देर बाद फिर सब उसी स्थान पर आकर इकट्ठे हुए।

"हवा हो गया क्या?" थानेदार ने झल्ला कर कहा—"आखिर वह इतनी देर में चला कहाँ गया? कुछ समझ में ही नहीं आता।"

"वह जादू ज़रूर जानता है," एक गँवार ने कहा।

"जो कुछ हो, पर मैं बचा की जान छोड़नेवाला नहीं हूँ।" थानेदार ने दृढ़ता से कहा—"ज़रा घोड़े को पानी पिला लूँ और फिर सरहद की ओर सरपट बढ़ता हूँ। देखूँ बचा जाते कहाँ हैं भागकर।"

उसने घोड़े को गढ्ढे की तरफ़ बढ़ाया और ठीक उसी स्थान पर रोका, जहाँ वह हत्यारा छिपा था। घोड़े ने गरदन बढ़ाई, दो-एक बार सूँघा और फिर मुँह हटा लिया और आगे बढ़ने से इनकार किया।

थानेदार ने धीरे से उसके कान पकड़े और उसे पानी में घुसने पर मजबूर किया लेकिन जानवर पीछे हट गया और फिर मालिक के लाख मारने-चुमकारने पर भी वह आगे बढ़ने को तैयार न हुआ।

"ओह, आज आप भी अकड़ रहे हैं!" थानेदार

साहब ने घोड़े की अकड़ पर झल्ला कर कहा—"देखें आज किसकी चलती है!"

वह घोड़े को पीटने ही पर था कि वह समझदार जानवर अपनी दुर्गति का हाल समझकर एकाएक मुड़ा और बाईं तरफ़ थोड़ी दूर पर गड्ढे में धँस पड़ा।

"ख़ैर, अपने हक़ में अच्छा ही किया।" थानेदार ने संतोष से कहा। घोड़ा पानी पी रहा था। थानेदार किसानों से कहने लगा—"भाई! तुम लोग जा सकते हो। अब मैं ही अकेले घोड़े पर जाऊँगा।"

किसान सब लौट गये। घोड़ा भर पेट पानी पी चुका। दोनों खेतों में होकर तेज़ी से आगे सरहद की ओर बढ़े।

हत्यारा ज्यों का त्यों साफ़ बच गया!

वह सर्दी से ठिठुर रहा था, पर वह पंद्रह मिनट तक उनके जाने के बाद भी वहीं इन्तज़ार करता रहा। बाद को वह निकला। पानी उसके कपड़ों से चू रहा था। उसके सिर पर घास-फूस पड़ी हुई थी, उसके कपड़ों और बदन से काई चिपक रही थी—वह थरथर काँप रहा था। उसका चेहरा मुर्दे की तरह मुर्झाया हुआ था। उसने दूर तक नज़र दौड़ाई। कहीं कोई दिखाई न पड़ता था। मैदान ख़ाली पड़ा था। वह बोलना चाहता था, पर उसके दाँत कटकटा

रहे थे। बहुत देर के बाद उसने कहा—"जान बची।"

फिर वह निराशा में कहने लगा—

"हाँ, बच तो गया, पर सिर्फ़ इस मौक़े पर। थानेदार सरहद पर मेरे लिए बैठा होगा। सब पहरेदारों को ख़बर दे दी गई होगी। सभी मेरी फ़िराक़ में होंगे। मुझे फिर ढूँढेंगे। अच्छी तरह ढूँढेंगे। ऐसी जल्दी मुझे छुटकारा न मिलेगा। आदमी—ईश्वर—सभी मेरे पीछे पड़े हैं। अब बहुत हो गया। मेरी सहन शक्ति के बाहर की बात है।"

यह कहता हुआ वह झाड़-पोंछ कर तैयार हो गया। वह सुनसान मैदान की ओर देखकर मानो डर रहा था। उसके दिल में भी वही निराशा, सन्नाटा और सर्दी मालूम पड़ती थी।

कुछ देर के बाद वह सिर पर हाथ रख कर सोचता रहा, अन्त में उसने दृढ़ता से कहा—"अच्छा, यही सही!" और वह गाँव की ओर बढ़ा, जहाँ से भाग कर वह आया था। घण्टे भर बाद वह उसी दूकान में पहुँचा, जहाँ वह पकड़ते-पकड़ते बच निकला था। लोग वहाँ मौजूद थे।

सब ने आश्चर्य से चिल्लाकर कहा—"खूनी!"

"हाँ!" हत्यारे ने गम्भीरता से उत्तर दिया—"मैं ही हूँ वह संगतराश जिसने अपनी स्त्री की हत्या की है। लो, मुझे पकड़ो। जाओ बुलाओ पुलीस को।"

वह दूकान के बीचोबीच निडर, डटकर जा बैठा।

दो पुलीस के सिपाही भागे भागे आये। हत्यारे ने पहचाना। ये वही थे, जो उसे ढूँढ़ते हुए इमली के पेड़ के नीचे से निकले थे। उसने चुपचाप उनके आगे अपने हाथ बढ़ा दिये। उन्होंने हथकड़ी डाल दी और उसे तहसील के थाने की तरफ़ ले चले, जहाँ उस समय वे उसे रखना चाहते थे।

अब वह अकेला रह गया—हवालात में। बन्द दरवाज़ों पर ताला पड़ा हुआ था। फाटक पर पहरे-दार बैठे थे। वह ज़मीन पर पड़े हुए पुआल पर धम से जा गिरा और एक प्रकार के भीषण आनन्द से वह चिल्ला उठा—"ख़ैर, अब तो बखेड़ा टला!"

डाक्टर वारेन का आविष्कार

विशाल लंदन नगर से बाहर जाने वाली निराली सड़क पर दो नवयुवक बड़ी तेज़ी से एक मोटर साइकल पर चढ़े चले जा रहे थे। जिम पीछे बैठा था। उसका मित्र जैक साइकल का संचालन कर रहा था। निराली, सीधी सड़क पा कर उसने गति बढ़ा दी थी और दोनों हवा की तेज़ी से तीर की तरह उड़े चले जा रहे थे। साइकल कुछ दूर जा कर एक मोड़ से बाईं तरफ घूम पड़ी। कोई चार फ़र्लांग पर एक बन्द फाटक दिखाई पड़ रहा था। उनके दोनों तरफ़ दूर तक चहारदीवारी बनी हुई थी। जैक ने मानों कुछ देखा ही नहीं उसकी मोटर साइकल उसी द्रुत गति से बढ़ रही थी।

"देखकर सामने!" जिम ने चिल्लाकर जैक को सावधान करना चाहा। जैक ने मानो कुछ सुना ही नहीं। उसने इंजन भरपूर खोल दिया। मोटर साइकल की गति और भी बढ़ गई! जिम घबरा उठा। उसकी आँखों के सामने दुर्घटना का चित्र

घूम गया। अब मोटर साइकल बन्द फाटक के समीप पहुँच चुकी थी।

एकाएक फाटक खुल गया! जिम के साँस में साँस आई, "परमात्मा की कृपा है।" उसके मुख से निकल पड़ा।

"धत्!" मेरे चचा की करामात है!"—जैक ने कहा, "तुम तो घबरा उठे थे। तुम्हें पता नहीं—फाटक से कुछ दूर पहले ही एक स्थान पर 'अल्ट्रा वायलेट किरण' रास्ते को काट रही है। उसके बीच से मोटर या साइकल निकलते ही उसमें रुकावट उत्पन्न हो गई और तुरन्त ही इसके कारण यंत्र ने फाटक को खोल दिया है। मेरे चचा ने ऐसा प्रबंध कर रखा है कि बिना किसी दरबान के फाटक स्वतः खुल जाया करे।"

"यदि कभी कल बिगड़ जाय और फाटक न खुले?"—जिम ने शंका प्रकट की।

"कैसे न खुले, मेरे चचा के आविष्कार क्या कच्चे होते हैं।"—जैक ने दृढ़ता से उत्तर दिया।

बात ठीक ही थी। डाक्टर वारेन के आविष्कार जगतप्रसिद्ध हैं। यदि वे चाहें तो अपने आविष्कारों से असंख्य धन पैदा कर सकते हैं पर जितना उनके पास है वे उसीसे सन्तुष्ट हैं। और उनके पास काफी धन भी है। उन्हें व्यसन है नये-नये आविष्कार

करने का। उनमें कितने तो ऐसे हैं जो सिर्फ मज़ाक के लिए हैं। जैसे उन्होंने एक गोली बनाई है जिस के खाने के बाद गोरा आदमी काला हो जाता है। ख़ैरियत यही है कि इसका असर कुछ ही घन्टों रहता है। इसी प्रकार की उनकी बनाई वह टिकिया है जिसके खाने से मूँछ-दाढ़ी के बाल फिर नहीं निकलते। परन्तु उन्होंने इसे केवल एक ही बार अपने एक परम मित्र—एक बड़े राजनीतिज्ञ को दिया था जो क्लीनशेव के बड़े शौकीन हैं। फिर उन्होंने उसे एकदम बन्द कर दिया। उनका कहना था कि इससे सेफ़टी रेज़र बनाने वालों का रोज़गार मारा जायगा और कितने कारीगर बेकार हो जायँगे। अस्तु।

जैक को डाक्टर वारेन बहुत मानते हैं। चचा भतीजे में ख़ूब पटती भी है, क्योंकि डाक्टर को कोई संतान नहीं—वे अविवाहित हैं। इसी कारण जैक कभी-कभी उनके पास छुट्टी बिताने आ जाता है। दोनों युवकों को देखकर डाक्टर वारेन बड़े प्रसन्न हुए और उनका स्वागत किया। जैक ने अपने मित्र के साथ जलपान किया और चचा के विशाल प्रयोग शाला का चक्कर लगाने चला। एक स्थान पर एक नया वायुयान देखकर वह कुछ समझ न सका और उसने उसके विषय में अपने चचा से दूसरे दिन

पूछने का निश्चय किया। जब दूसरे दिन प्रातःकाल वह चचा के साथ ब्यालू करने बैठा तो वह उस यान के बारे में पूछने का अवसर ढूँढ़ रहा था। उसके चचा धीरे-धीरे नाश्ता करते हुए न जाने किन-विचारों में लीन थे। अवसर पाते ही जैक ने पूछा, "ताऊ जी! उत्तर ओर किनारे के बड़े मैदान में वह नया वायुयान कैसा है?"

जैक के बूढ़े चचा का एकाएक ध्यान टूटा। उन्होंने कहा, "हाँ बेटा! क्या पूछ रहे थे तुम?—वह वायुयान—हाँ, वह मेरा 'स्ट्रेटोप्लेन' है। अभी थोड़े ही दिन हुए वह तैयार किया गया है।"

"स्ट्रेटोप्लेन! यह कैसा वायुयान है?" जैक ने शंका समाधान चाहा।

"यह यान वायु-मण्डल के सबसे ऊपरी तल में विचरण करेगा—पर बेटा, शायद तुम 'स्ट्रेटोस्फियर' नहीं समझते। यह वायु-मण्डल का वह स्तर है जिसमें वायु अत्यन्त हल्की और कम होती है। रुकावट कम होने के कारण, उसमें किसी गति का अवरोध नहीं होता। हमारा यह 'स्ट्रेटोप्लेन' पहले-पहल उस स्तर की यात्रा करेगा—वहाँ ठहर सकेगा—वहाँ से लौट सकेगा।"

"वाह, बड़ी अद्भुत चीज़ तैयार की आपने।

मैं उसे फिर जाकर देखूँगा"—जैक ने प्रसन्न होकर कहा।

डाक्टर फिर न जाने किन विचारों में लीन हो गया। एकाएक जैसे जगकर उन्होंने कहा, "बेटा जैक! उसके समीप न जाना, छूना भी कभी नहीं। उसकी मशीन की संचालन-विधि एक रहस्य है। उसमें ख़तरा भी है।"

जैक का उत्साह ठंठा पड़ गया।

"अच्छा चाचा जी। मैं उसके समीप न जाऊँगा"—उसने कहा, पर उसको जिज्ञासा भीतर ही भीतर उथल-पुथल मचा रही थी।

जलपान के बाद उसके चचा प्रयोगशाला में जा कर किसी प्रयोग में लग गये। जैक अपने कुतूहल को न रोक सका। जिम के साथ वह नया वायुयान देखने चल पड़ा। उसने देखा कि एक विचित्र तरह का वायुयान, काफी भारी, रेल की पटरियों पर खड़ी एक ट्राली गाड़ी पर रखा है। उसके प्रत्येक कल-पुर्ज़े चमक रहे हैं। और आश्चर्य की बात यह थी कि न उसमें 'प्रोपोलर' था, न नीचे रबड़ की पहियोंवाली टाँगें। उसके दोनों बगल चिड़ियों की तरह तो पंख निकले थे और पीछे की ओर मछलियों की तरह दो छोटे पंख या तैरने वाले डैने। साधारण वायुयान और उसमें बड़ा अंतर था।

उसमें बैठने की जगह कहाँ थी इसका भी पता न लगता था। जैक से नहीं रहा गया। पहले वह दूर से देखता रहा, फिर वह उसके ऊपर चढ़ कर देखने लगा। उसने देखा कि एक गोल सा ढक्कन ऊपर से जैसे बन्द किया गया है। उसमें एक हैडंल लगा था। जैक ने उसे उठाकर खोल लिया। देखा, तो भीतर काफ़ी बड़ा कमरा नज़र आने लगा। वह भीतर उतर गया। उसका मित्र जिम भी नीचे पहुँचा। दोनों ने भीतर पहुँचते ही ऊपर का ढक्कन पन्द कर लिया जिसमें किसी को संदेह न हो कि कोई इसके भीतर खोलकर गया।

जैक ने देखा, भीतर आराम से बैठने की गद्दे-दार कुर्सियाँ थीं। सामने बहुत से कल-पुर्जे और नापने के मीटर लगे थे। अग़ल-बग़ल खिड़कियों से प्रकाश आ रहा था। पर कहीं उसमें चालक के लिये बैठने की जगह नहीं बनी थी जैसी साधारण वायु-यान में जैक ने देखे थे। केवल एक तरफ मोटरकार के ब्रेक की तरह दो बड़े लिवर थे। शायद रोकने या चलाने के लिए।

जैक को उस पर हाथ रखते हुए देख जिम ने उसे रोका—"देखो, बिना समझे उसे न छूओ—कहीं कोई बात...।"

जैक उसे डरते देख हँसकर बोला "क्या होगा

छूने से। देखो न—" और उसने दाहिने लिवर को अपनी तरफ़ ज़ोर से खींच लिया !

एकाएक बड़े ज़ोर का धड़ाका हुआ मानों कोई बड़ी तोप दग गई हो ! ज़ोर का एक धक्का भी लगा और ऐसा मालूम हुआ मानो समूचा यान हवा में उड़ गया हो। धक्के से दोनों युवक फ़र्श पर चित हो गये। जैक एक काले गोल पीपे से जा टकराया जो पीछे लगा था। क्षण भर बाद दोनों ने अपने को सँभाला और चारों तरफ़ घबरा कर देखने लगे कि कहीं कुछ टूटा-फूटा तो नहीं। सब ज्यों का त्यों था केवल उस काले पीपे के पीछे से सी-सी की आवाज़ आ रही थी।

दोनों इधर-उधर देखने लगे। जैक ने खिड़की के पास जा कर बाहर की ओर देखा। उसका चेहरा पीला पड़ गया—उसकी आँखें जैसे आश्चर्य से बाहर निकलने निकलने हो गईं। वह कठिनता से अपने को सँभाल रहा था। उसका मित्र जिम लपक कर उसके समीप पहुँचा। उसने देखा—वे भूमि से बहुत ऊपर आसमान में थे ! और भूमि बड़ी तेज़ी से उनसे दूर भागती जा रही थी। अपनी प्रयोग-शाला के बाहर जैक के बुड्ढे चचा विक्षिप्त की भाँति ऊपर देखते हुए, सर धुनते हुए, इधर-उधर

दौड़ रहे थे ! क्षण ही भर बाद भूमि का सारा का सारा दृश्य अदृश्य हो गया !

दोनों युवक कुछ हताश होकर कुरसियों पर धम से बैठ गये।

"अब क्या होगा ?"—जिम ने कहा।

"होगा क्या—हम वायु-मण्डल के ऊपरी तल की सैर करेंगे।"—जैक ने दृढ़ता से ढाढस दिलाया, "पर उसके बाद"—और वह कुछ चिंतित हो उठा।

"आखिर बिना इंजन के कैसे उड़ा ?" जिम ने शंका की।

"उड़ा कहाँ ? यह राकेट के सिद्धान्तों पर बना हुआ जान पड़ता है। देख नहीं रहे हो। उसके पीछे दुम की ओर कैसी सफ़ेद धुएँ की लकीर छूटती जा रही है।" जैक ने उधर दिखाकर कहा।

"पर हम उतरेंगे कैसे ?" जिम ने कुछ घबराहट प्रदर्शन किया। जैक बोला—"जब ऊपर चढ़े हैं तो कभी उतरेंगे ही—सवाल यही है अगर किसी तरकीब से ठिकाने से उतरें तब तो कुशल, नहीं तो भूमि से टकरा कर हम बचेंगे नहीं।"

दोनों मित्र अब उस केबिन के यंत्रों की परीक्षा करने लगे कि कहीं कुछ उपाय निकल आये।

बाहर खिड़की से अब भूमि नहीं दिखाई पड़ रही थी। वे काफ़ी ऊँचे आसमान में पहुँच चुके थे।

जैक ने अपनी घड़ी देखी। भूमि से उठे हुए अभी केवल चार ही पाँच मिनट हुए थे पर वे इतने ऊपर पहुँच चुके थे कि भूमि नहीं दिखाई पड़ रही थी। उनकी नज़र तापमापक यंत्र पर गई। उसमें का पारा शून्य से १०० डिगरी नीचे उतर गया था। बाहर यान के पंख पर बरफ़ जम रही थी पर कमरे में शीत का कहीं पता न था। जैक ने कहा —"देखो जिम, मेरे चचा ने कैसा बना रखा है यह केबिन। इसमें बाहर के शीत-ताप का कोई असर नहीं पड़ रहा है। हम लोग भूमि से चार मील ऊपर उठ आये हैं। इतना ऊपर कोई वायुयान अभी तक नहीं पहुँचा है!"

दस मिनट बाद उन्होंने ऊँचाई-मापक यंत्र को देखा। "अरे! हम अब ऊपर नहीं चढ़ रहे हैं।" जैक ने कहा। "जिम, मैं तो दूसरे लिवर को आजमाता हूँ। शायद हम नीचे उतर सकें।" और यह कह कर जैक ने दूसरा लिवर खींच ही लिया। दोनों युवक बड़े आशंकित हो परिणाम की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ ही क्षण बाद ऐसा जान पड़ा मानों उनका यान गोले की तेज़ी से ऊपर फिक रहा हो। जिम ने खिड़की से देखा तो यान के दोनों बड़े पंख सिकुड़ कर भीतर खिच गये थे। अब यान बड़ी तेज़ी से ऊपर बढ़ा जा रहा था। नीचे की खिड़की

से देखने पर मालूम हुआ कि पृथ्वी घने बादलों की ओट में छुप गई थी। बादलों का भी पता अब नहीं था। संभवतः वे बादल नहीं थे वरन् समुद्र की लहरों की सफेद चोटी थी जिन्हें देख बादलों का भ्रम हुआ था।

आसमान पहले चमकदार नीला दीख पड़ता था, फिर गहरा नीला। अब उन्हें चमकते हुए तारे नज़र आने लगे थे, यद्यपि एक ओर सूर्य भी दिखाई पड़ रहा था। नीचे देखने पर पृथ्वी का कहीं चिह्न भी नहीं दिखाई पड़ रहा था। केवल एक चमकदार नीली आभा-मात्र लक्षित हो रही थी।

जैक ने यंत्र देखकर कहा, "तीस मील ऊपर! क्या हम लोग चाँद तक पहुँच कर ही दम लेंगे।"

"नहीं जी! चाँद बहुत दूर है"—जिम ने कहा।

फिर सी-सी की आवाज़ सुनाई पड़ने लगी। जैक ने कहा, "देखो तो, कहीं हवा तो नहीं निकल रही है।" जिम ने ढूँढ़ कर एक टोंटी घुमा दी। आवाज़ बन्द हो गई। पर कुछ ही देर बाद उन्हें ऐसा जान पड़ा मानों उनका दम घुट रहा हो। थके से होकर दोनों फर्श पर गिर पड़े। उनका सिर घूमने लगा। ऐसा जान पड़ा मानों वे मर ही जायँगे। जिम ने बड़ी कठिनाई से लेटे-लेटे खिसक कर वह टोंटी फिर खोल दी जिसे उसने थोड़ी देर पहले

बन्द कर दी थी। फिर सी-सी की आवाज़ आने लगी, जैक क्षण भर के लिए बेहोश हो गया था। होश आने पर उसे कुछ अच्छा लगने लगा। धीरे-धीरे फिर दोनों ठीक हो गये। उनका दम घुटना जाता रहा।

जैक ने पूछा, "यह हुआ क्या ?"

जिम ने कहा, शायद उस टोटी के बन्द करने से कमरे का आक्सीजन कम हो गया था इसीसे हमें हवा नहीं मिल रही थी। मैंने किसी तरह बेहोश होते-होते उसे फिर खोल दिया इसी से फिर वायु मिलने लगी।"—अब दोनों भले-चंगे होकर कमरे में टहलने लगे। खिड़की के बाहर अद्भुत दृश्य दिखाई पड़ रहा। उत्तर तरफ़ आसमान में लहरियादार रंग-रिंगी मखमली झालर सी टँगी दिखाई पड़ रही थी। यह 'अरोरा बोरियाज़िस' था, जो केवल ध्रुव प्रदेशों में ही दीख पड़ता है। यान इतनी ऊँचाई पर पहुँच चुका था कि वे यह दृश्य साफ़ देख सकते थे। धीरे-धीरे वह भी अदृश्य हो चला।

एकाएक एक बड़ा सा जलता हुआ गोला उनकी ओर आता हुआ दिखाई पड़ा। ऐसा लगा मानों वह यान से टकरा कर रहेगा। पर धीरे-धीरे वह भी पीछे छूट कर अदृश्य हो गया। जिम ने पूछा—"वह क्या था !" जैक हँस पड़ा, बोला, "समझे नहीं—

वह उल्का थी जो वायु-मण्डल से निकलती हुई जल गई ।"

ताप-मापक यंत्र पर दृष्टि पड़ते ही जिम चिल्ला उठा—"अरे देखो तो जैक, पारा १०० डिगरी से ऊपर जा रहा है ! इतनी गरमी !" पर कमरे में तापमान समान था । जैक ने कहा, "हम लोग अब 'विद्युत् मेखला' को पार कर रहे हैं । पर डरने की बात नहीं, हम पर कोई असर न होगा । हमारा केबिन चचा ने ऐसा बनाया है कि बाहर की गरमी-सरदी का भीतर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा ।"

अभी उनका यान ऊपर की ओर चला ही जा रहा था । एकाएक उनके यान की सभी वस्तुएँ स्वतः चमकने लगीं मानों उनमें से ज्योति निकल रही हो—यहाँ तक कि जिम और जैक के शरीर में से भी; कपड़ों में से भी । कुछ देर तक वह बढ़ती रही; फिर कुछ क्षण पश्चात् वह जाती रही । अब वे पूरे सौ मील ऊपर पहुँच चुके थे ।

जैक ने यंत्र की ओर देखा । अब उनके यान का ऊपर जाना रुक गया था । उसके पीछे से जो फट-फट शब्द बराबर आ रहे थे वे भी शान्त हो चुके थे । धीरे-धीरे ऐसा लगा मानो यान नीचे की ओर गिरने लगा हो । बात सच थी । ऊँचाई-मापक यंत्र की सुई बराबर बतला रही थी कि यान बड़ी तेज़ी

से—२०० मील प्रति घंटे की गति से नीचे उतर रहा था।

जिम ने घबरा कर कहा, "जैक पंख खोल दो। नहीं तो हम जल्दी भूमि से टकरा कर नष्ट हो जायँगे।

"जैक ने वही लिवर आगे ढकेल दिया, पंख फिर बढ़ कर निकल आये। पर इसका परिणाम कुछ न हुआ। पहले यान सीधे नीचे की ओर गिर रहा था। अब वह वायु पर रुकता हुआ तिरछा उतरने लगा। भुमि से टकराने का खतरा ज्यों का त्यों बना रहा। दोनों नवयुवक परेशान होकर इधर-उधर केबिन के यंत्रों को देखने-भालने और मूठियों को घुमाने लगे कि शायद कहीं कोई कल हाथ लग जाय और वे निरापद उतर सकें।

जैक ने कहा, "हम अब ४०० मील प्रति घण्टे के हिसाब से गिर रहे हैं। इस प्रकार दस-बारह मिनट में हम भूमि पर पहुँचते हैं।" और वह उतावली में जिसे पाता उसी को इधर-उधर घुमाने लगता। एकाएक उसका हाथ एक काली मूठ पर जा पड़ा। उसके घुमाते ही उसे अपने चचा की घबराई हुई आवाज़ सुनाई पड़ी। वह रेडियो सेट था!

जैक के चचा डाक्टर वारेन भूमि पर से चिल्ला रहे थे—"जैक बेटा, घबराना मत! अब तुम अवश्य

नीचे उतर रहे होंगे। देखो, जल्दी से लाल जंजीर खींचो—लाल ज़ंजीर—लाल ज़ंजीर!"

डाक्टर वारेन बार-बार अपनी चेतावनी दोहरा रहे थे। उनकी आवाज़ घबराई हुई थी। जैक ने लपक कर छत से लटकती हुई वह लाल जंजीर खींच ली। यह लो! एकाएक एक बड़ा सा पाराशूट (छतरी) खुल पड़ा। सारा यान उसके सहारे धीरे-धीरे भूमि पर उतरने लगा। अब वे सुरक्षित उतर सकेंगे।

दोनों खिड़की से भूमि का दृश्य देखने लगे। कुछ ही देर बाद उनका यान एक खेत में भूमि से टकराया—जिसमें गेहूँ पक रहे थे। और फिर वह निश्चल हो गया। जैक ने गोल ढक्कन खोला। दोनों मित्र निकल कर बाहर आये।

अब वे सकुशल भूमि पर खड़े थे। जिम ने कहा, "दोस्त, मैंने तो समझा था अब फिर भूमि के दर्शन न होंगे।"

"धत्त पागल! मेरे चचा के आविष्कार क्या ऐसे वैसे होते हैं"

दोनों ने देखा, दूर तक खेत ही खेत दिखाई पड़ रहे थे। अब उन्हें चिंता हुई कि कैसे पता लगे कि वे कहाँ आकर पहुँचे हैं।

दूर पर एक किसान-सा कोई आदमी घबरा

कर उनकी ओर शंकित नेत्रों से देख रहा था। जैक ने इशारा किया और वह अश्चर्यभरी आँखों से देखता हुआ उनकी तरफ़ बढ़ा। उसके आते ही जैक ने पूछा—"हम लोग कहाँ हैं बतला सकते हो भाई ?"

पहले तो वह कुछ बोला ही नहीं। वह दौड़ता हुआ आया था और हाँफने लगा था।

जैक ने पूछा, "तुम कौन हो भाई ?"

वह बोला "अमेरिकन !"

"अमेरिकन ! हम कहाँ हैं ?" जिम ने कहा।

"आप न्यूयार्क से ५० मील एक फ़ार्म के खेत में हैं।" उसने उत्तर दिया।

"जिम, अभी दो घण्टे भी नहीं हुए और हम इंगलैण्ड से ४ हज़ार मील की दूरी पर आ पहुँचे।"

डाक्टर वारेन ने बेतार के टेलीफ़ोन से सारे अमेरिका को ख़बर दे दी थी कि दो युवक स्ट्रोटोप्लेन पर शायद वहाँ उतरेंगे। लोग उन्हें ढूढ़ने के लिए चौकस थे। ज्योंही इन दोनों युवकों के वहाँ उतरने की ख़बर पहुँची, बड़े धूम-धाम से उनका जुलूस निकाला गया।

फिर तो डाक्टर वारेन के आविष्कार की धूम सारे पृथ्वी पर मच गई।

बुलबुल

"मोती ! मोती ! चल ! चल इधर ! सूअर, पाजी, बदमाश कुत्ता !" उस लड़की ने अपने भरसक ख़ूब सोचा पर उसे और कोई भारी गाली याद नहीं आ रही थी जो वह उस कुत्ते को दे सके। उसने तब पास पहुँचकर उस पर अपना क्रोध उतारा।

कुत्ते का रङ्ग सफ़ेद था। बाल छोटे-छोटे थे, उसके कान और आधा मुँह काला था, उसकी सूरत से शरारत टपकती थी। उससे बढ़ कर पाजी, मनमाना शायद ही कोई और कुत्ता हो। उसने क्षण भर के लिए उस छोटे-छोटे बालोंवाली छोकरी की ओर देखा और फिर तुरन्त घास पर फुदकती हुई किसी चीज़ को ध्यान से देखने लगा। उसने उसे सूँघा और फिर अपने पंजों से उसे ठोंक दिया।

"हट...दुर।" अन्तिम 'र' देर तक बादल की गरज की तरह गूँजता रहा। इसी के साथ कुत्ते की बगल में एक लात भी पड़ी—भरपूर जितना कि एक आठ बरस की छोटी दुबली-पतली लड़की जमा

सकती थी। 'प्यारी' को शायद इसमें ख़ुद चोट लगी थी क्योंकि कुत्ते को तो कुछ भी न जान पड़ा।

प्यारी का चेहरा लाल था। उसकी आँखों में आँसू भरे थे। उसने झुककर घास में से उस छोटी ज़िन्दा चीज़ को उठा ली और उसे चूमने और दुलारने लगी। वह छोटा सा—बहुत नन्हा सा—बुलबुल था। वह बाग़ के सबसे पुराने ऊँचे पीपल के पेड़ से भटककर उड़ आया था। पेड़ की चोटी ऊँचे मीनार तक पहुँचती थी। बेचारा बहुत थक गया था। अब वह कैसे फिर अपने घोंसले में पहुँच सकता था ?

जान पड़ता था वह अपना दुख समझ रहा था, बीच बीच में वह 'चीं' 'चीं' करता और डर से अपनी पलकें झपकाता था। उसका बदन ऐंठ रहा था और उसका दिल ज़ोरों से धड़क रहा था। ज़रूर उसे कस कर चोट लगी थी। उस दुष्ट मोती ने उसे चोट पहुँचाई होगी। शायद उसकी पसुली में चोट लगी थी। प्यारी को क्या मालूम कि किसने पहुँचाई थी! और अब वह ढिठाई से प्यारी के कंधे पर अपना सिर रख रहा था और बीच-बीच में अपना मुँह चाटता था। उसकी आँखों और झेंपी सूरत से मानो उसका अपराध प्रकट होता था। मानों अब वह कह रहा था "मुझे दे दो इसे! मैंने इसे

पाया है। यह मेरी चीज़ है। मैं उससे खेलूँगा—यह मज़े में 'चीं' 'चीं' करता है—जब मैं अपने पंजे से उसे छूता हूँ।"

"दुर—र—र—र" फिर लड़की ने उसी भाँति डाँट कर कहा और उसने उठ कर मोती को एक लात भी जमाई जिससे उसका पैर उखड़ सा गया पर वह कुत्ता केवल मुस्करा कर रह गया।

वह रसोई में भागी गई और दूध और रोटी के चूरे माँग कर उस बुलबुल को खिलाने लगी। वह इस काम में चतुर थी। बीते साल उसने इसी तरह तीन गौरैयों के बच्चों को पाला था जो अपने घोंसले से गिर गये थे। उनमें दो तो इससे भी छोटे थे। पर वे गौरैये थे, यह था बुलबुल।

बुलबुल का बच्चा रोटी खाने को तैयार न हुआ। जब प्यारी ने उसकी चोंच खोल कर उसमें दूध का एक बूँद छोड़ दिया तो उसने उसे घोंटा। रसोइया अपना काम करता हुआ दया की आँखों से उसे देख रहा था। उसने कहा—"जाओ, तुम फ़जूल उसे तंग कर रही हो। लाओ। इधर मुझे दो मैं उसका इलाज कर दूँ।"

"इलाज कर दूँ...?" प्यारी ने अपना सिर उठाया और उसे धीरे-धीरे क्रोध आने लगा।

"तुम्हारा ख़ुद इलाज कर दिया जायगा। पाजी कहीं का !"

सैकड़ों कबूतर, मुर्ग़ी और बत्तखों को हलाल करनेवाले उस रसोइये ने सिर हिला कर कहा—"मैं पाजी नहीं हूँ। मुझसे देखा नहीं जाता उसका दुख। क्या मुझे भी उससे खेलना है ?"

प्यारी डर के मारे वहाँ से भागी—उस हत्यारे रसोइये के डर से, जो ऐसी बातें कह रहा था। वह सोचने लगी, "मैं उसे खेलने के लिए दिक़ कर रही हूँ, अगर यह सच है तो मैं कुत्ते से भी बढ़ कर अपराधी हूँ। बेचारा वह क्या जानता था कि उसे दुख पहुँचा रहा है। हम लोग तो आदमी हैं। हम जान बूझ कर काम करते हैं। उस दिन क्या हुआ। जानवरों के डाक्टर ने आकर कहा था कि बूढ़ा कुत्ता अच्छा नहीं हो सकता ? अम्मा ने बाबा से कहा था, उसे गोली न मारो—अपनी मौत से मरने दो। और बाबा ने—बड़े बाबा के दुम बने हैं—अपनी बन्दूक़ उठा कर उसे मार ही दिया।"

"मैं तुम्हें बचाऊँगी," उसने उस चिड़िया के बच्चे से धीरे से कहा—"मैं तुम्हें मारूँगी नहीं। मैं तुम्हारा इलाज जानती हूँ। तुम भी क्या कहोगे—मैं उड़ रहा हूँ। बस फिर क्या ? और चाहिए क्या तुम्हें ?"

वह आँगन में दौड़ी गई और वहाँ से चौकीदार की कोठरी के पास पहुँची जो मीनार पर थी। वह सीढ़ियों से ऊपर पहुँची।

चौकीदार सचमुच चौकीदार न था—वह बूढ़ा आदमी था। कुछ कर धर नहीं पाता था। उसका काम सिर्फ़ सोना और सुंघनी सूँघना था। वह मीनार को अपना इलाक़ा समझता था, पर कभी मीनार पर ख़ुद न चढ़ता था। उसकी बूढ़ी बिल्ली ने लोगों के साथ ऊपर आने-जाने का काम अपने सिर ले रखा था।

चौकीदार के कमरे का दरवाज़ा थोड़ा खुला था। प्यारी ने जाते हुए देखा कि वह सो रहा है—अपनी चारपाई पर और उसकी बिल्ली तख़्त पर बैठी देख रही है। बिल्ली लड़की को देखते ही नीचे कूद पड़ी, दबक कर किवाड़ों के बीच से साँप की तरह ऐंठती हुई निकली और प्यारी के पीछे लग गई। वह उसके पैरों के पास आई और उसकी ओर ग़ौर से देखती हुई उससे लग कर अपना बदन रगड़ने लगी। क्या उसे मालूम हो गया था कि प्यारी के हाथ में चिड़िया है या उसने उसे सूँघ लिया था।

ज़ीने पर गर्द की तह जमी थी और उस पर धीमी-धीमी रोशनी पड़ रही थी। खिड़कियाँ धूल से भरी थीं और चारों ओर जाले लगे थे। बीच-

बीच में कुछ फड़-फड़ाहट सुनाई पड़ती, चूहा दिखाई पड़ता और फिर 'चें' 'चें' की डर और दुखभरी आवाज़ सुनाई पड़ती—फिर शिकारी बिल्ली लौट कर प्यारी की ओर अपनी भूरी आँखों से देखती और कहती हुई जान पड़ती, "प्यारी! देखो, मुझे यह सब नहीं चाहिए। तुमने मेरा शिकार छीन लिया है। लेकिन समझ रखो मैं छीन लूँगी तुमसे। मेरे पंजे तेज़ हैं।"

लड़की डर गई और वह दौड़ कर सीढ़ियों पर चढ़ने लगी। आज उनका अन्त ही नहीं होता था। सीढ़ियाँ भी ऊँची हो गई थीं और बार बार घूमने से प्यारी का माथा घूमने लगा।

बहुत देर से चिड़िया ऐसी बुत थी मानो उसमें जान ही नहीं है। एकाएक वह हिली, उसने अपने पंख झाड़े। उसके पैर काँपने लगे। वह फिर चुपचाप पड़ गई। शायद यह उसका अन्त समय था। प्यारी अपने हाथों में उसे मरी हुई तो नहीं ले जा रहीथी!

"अरे! अरे! मर गई! मरी हुई को अपने पास रखना, अपने हाथों में उसका मरना!" वह काँप उठी और उसने धीरे से कहा—"ए री चिड़िया! मेरे हाथ में न मर—मेरे हाथ में न मर!" उसने बुलबुल के सिर के पास अपने कपोल रख दिये। उसे फूँक मारने लगी और एकाएक चीख़ उठी। बिल्ली

उसके मुँह पर कूद पड़ी थी और उसे धमका रही थी। लड़की के मन में विचार आया "दे दें उसे— मर तो गई ही है। लेकिन अगर इसमें जान बाक़ी हो—उसे तकलीफ़ न होगी—जब वह उसे नोचे घसोटेगी। नहीं—कभी नहीं।" उसने ठान लिया। अब उसे बिल्ली का डर न था।

"हट—बिल्ली की दुम—पाजी!" उसने चिल्ला कर कहा और उसे इस पर संतोष हो रहा था कि उसने उसके लिए अच्छी सी गाली ढूँढ़ निकाली थी।

वह दौड़ कर ऊपर पहुँची। लकड़ी के पुराने तख़्तों की दरार से होकर सूरज की सुनहली किरणें आ रही थीं। प्यारी छज्जे पर पहुँची। बिल्ली उसके पीछे पीछे थी। अब उसे बिल्ली का डर नहीं था। उसने बुलबुल के छोटे सिर को एक बार चूम लिया।

"अब मैं तुम्हें छोड़ देती हूँ। अब तुम्हारा दुख कट जाता है।" उसने छज्जे से देखा।

पीपल की चोटी सब पेड़ों के ऊपर दिखाई पड़ रही थी। एक ऊँची डाल पर दो चिड़ियाँ फुदक रही थीं और वे इधर-उधर उड़ उड़ कर चह-चहाती थीं।

अच्छा यह बुलबुल के माँ-बाप हैं। तुम हो। हा! तुम्हारा बच्चा आया तो है पर देर हो गई। वह मर गया है। यह देखो। प्यारी ने हाथ बढ़ाया बिल्ली तुरन्त कूद पड़ी।

"तुम्हें— नहीं — मिलेगा —तुम्हें नहीं मिल सकता।" वह चिल्ला उठी। उसने क्षण भर के लिए आँखें मूँद लीं और उसने अपनी मुट्ठी खोल दी।

चिड़िया ऊपर से गिरी। पर—अरे! अरे! वह मरी न थी! वह ज़िन्दा थी! उसने पर फुला दिये, कुछ डर कुछ ख़ुशी की आवाज़ उसके मुँह से निकल गई। वह उड़ी, कुछ लड़खड़ाती हुई—मत-वाली सी—फिर वह उड़ चली पीपल की चोटी की ओर—उसके माँ-बाप ने ख़ुशी से चहचहा कर उसका स्वागत किया। उत्सुकता से मानो माँ पूछ रही थी—"कहो मज़े में तो रहे—बच्चे? सब ठीक है न? कुछ चोट-ओट तो नहीं लगी?"

"नहीं! अब कुछ चिन्ता की बात नहीं है।" प्यारी ने चिल्ला कर कहा और बिल्ली के गोल, चिपटे, खिसियाने मुँह पर उसने ज़ोर से हँस दिया।

"दौड़ उसके पीछे! जाकर पकड़ ले—उसे! बिल्ली की नानी! अब वह तेरे पंजे में नहीं आती, तुम्हारे क्या किसी के भी। वह अपनी माँ के पास है अब।" उसने चिढ़ा कर बिल्ली से कहा।

वह चुप हो गई और कुछ गम्भीर हो गई। उसने ऊपर देखा और धीरे से दुहराया 'अपनी माँ के पास।'

उसे नहीं पता था इसका क्या अर्थ है—वह बच्ची थी। पर यह उस चिड़िया—उस बुलबुल के बच्चे के लिए बड़े सुख की बात थी।

वीर बाला

"चलो जल्दी करो···कात्या···जल्दी···।"

जल्दी और काँपते हुए हाथों से उसने नई पेटी तैयार की। उसके बाल अस्तव्यस्त हो रहे थे—और उसके सिर पर बँधी रुमाल से बाहर वे बिखर रहे थे। अलेक्सी की आँखें मशीनगन पर टिकी थीं—उसने क्षण भर के लिए भी उससे हटा कर उसकी तरफ़ नहीं देखा।

"जल्दी—जल्दी—तैयार रहो—!"

मशीनगन भड़भड़ाये चली जा रही थी—उसके उदर में वह कारतूसों की लम्बी पेटी धीरे-धीरे खाली होती जा रही थी। कात्या ने जल्दी से नई पेटी उठा ली और तैयार खड़ी हो गई।

"कात्या!"

"हाँ?"

"जरा फिर तो फोन करने की कोशिश करना। कर्नल को सारी बातें बतला देना—सुना? सब हाल सुना देना!"

वह झाड़ियों के नीचे रेंगती हुई चली। ढाल के उस पार होकर वह दौड़ती हुई अपनी पूरी शक्ति से

भाग कर एक खंडर में जा घुसी। झपट कर उसने टेलीफोन उठा लिया—"हॉलो—नं०—३—५ से मिलाना !"

"कोई नहीं बोलता।"

"अच्छा—३—६ से मिलाना।"

"कोई जबाब नहीं आया।"

उसने टेलीफोन रख दिया। 'कनेक्शन' कट गया। वह खड़ी बेबसी में हाथ मलने लगी। क्या करे ? उसने लपककर खिड़की से बाहर झाँका। झाड़ी की ओर से बन्दूकों की बाढ़ की आवाज़ आ रही थी। उसने फिर काँपते हुए हाँथों से टेलीफोन उठा लिया।

"मैं बोल रही हूँ—ओरलोवका से—मेहरबानी करके शहर से मिला दें—मुझे ३—५—चाहिए—समझे—"

"सुनिये—ज़रूरी काम है—मैं बोल रही हूँ—ओरलोवका से—जल्दी से मिला दीजिये शहर से ! किसी नम्बर से—तुरन्त—धन्यवाद !"

"बहुत अच्छी—पर करूँ क्या—" उधर से उत्तर आया।

वह काँप उठी। उसे ऐसा लगा मानों वह 'सेन्ट्रल आफिस' की, टेलीफोन पर काम करने

वाली लड़की की बात सुन रही थी—"जल्दी—शहर—शहर—शहर के मिला दें—"

"कौन—ओरलोवका से !"

"हाँ—मैं—हूँ—ओरलोवका से !"

"शहर की लाइन कट गई है—मरम्मत हो रही है—ठहरना होगा।"

कात्या हताश हो उठी। वह द्वार की ओर लपकी। झाड़ियों तक पहुँचने के लिए उसे पेट के बल रेंगना पड़ा। अब वह वहाँ पहुँच गई जहाँ गोलियाँ चल रही थीं। क्षण भर के लिए अलेक्सी ने अपनी मशीनगन से आँखें हटाईं। उसके धुएँ से गिनगिनाये चेहरे से पसीने की धार चू रही थी।

"कहो ?"

"लाइन कट गई है—मरम्मत हो रही है।"

उसने दाँत किटकिटा लिये—"कात्या! तनिक ग्रीशा को देखोगी—? उसकी तरफ़ से कोई आवाज़ नहीं आ रही है।"

वह दाहने ओर भीटे की चोटी पर रेंगती हुई गई। वह युवक, सीमा का संरक्षक ज़मीन पर औंधा पड़ा था। उसने उसके युवक कपोलों को अपने कोमल अधरों से स्पर्श किया—धीरे से—वह अभी तक गर्म था। उसने उसके कोट के भीतर

हाथ डालकर उसके दिल पर हाथ रखा—उसकी धड़कन बन्द हो चुकी थी !

उसने लौट कर अलेक्सी को समाचार दिया—"वह मारा गया !"

"नौ"—उसने कहा, "कारतूस लाना—कात्या !"

वह उसे बराबर कारतूसों की पेटी थँमाती रही। उसकी आँखें घूम-घूम कर उसी स्थान पर स्थिर हो जातीं—उस पार, उस पतली नदी और उस पर बने छोटे पुल पर। वहीं से—उसी के आस-पास से—उस हरी भूमिका के भीतर से आग की ज्वालाएँ रह-रह कर निकल रही थीं। जर्मन वहीं छिपे थे—

"कात्या—लाना—पेटी—"

वे वहीं भूमि से चिपटे पड़े थे—झाड़ियों और ऊँची-ऊँची घास में छिपे हुए, और आँखों से ओझल वे बराबर गोली चलाते चले जा रहे थे—क्षण भर के लिए भी वे नहीं रुक रहे थे। उनके बीच २-३ सौ गज़ से अधिक का फासला न था।

कात्या बराबर उसे कारतूस की पेटी दे रही थी। वह मशीन की तरह यह काम कर रही थी—उसी प्रकार मशीन की तरह वह गिनती भी जाती थी—"नौ—बस नौ—बाकी—रहे !"

इससे अधिक वह नहीं गिन पाती थी।

पास ही कहीं से एक कराह सुनाई पड़ी। अब नौ नहीं रहे—केवल आठ—सिर्फ़ आठ!

"कात्या फिर देखना—शायद लाइन की मरम्मत हो गई हो।"

तुरन्त वह दौड़ी गई।

"मैं हूँ—ओरलोवका से—कृपा कर शहर से मिला दें। शहर से—३—५—"

"अभी दो घण्टे लगेंगे कम से कम—मरम्मत में—"

उसने टेलीफोन रख अपना रास्ता लिया—भागी-भागी लौटी।

"अलेक्सी—अभी दो घण्टे लगेंगे मरम्मत में।"

"तब तक क्या हम जिन्दा बचेंगे—कात्या!"

फिर उसने जल्दी से गिना—"सात—बस सात रहे।"

"कात्या—तुम्हारे हाथ में यह चोट कैसी—खून कैसा। रुमाल लपेट लो—और ज़रा जाकर देखना तो सेटन को क्या हुआ।"

झट कात्या ने रुमाल हाथ पर लपेटी और झाड़ियों में रेंगती पहुँची।

"प्लेटन—तुम्हें चोट पहुँची है—पीछे चले जाओ।"

"नहीं, कुछ नहीं—कात्या कुछ नहीं है।"

"कात्या !"

उसने अपने पति की आवाज़ सुनी और फिर वह उधर दौड़ी।

"सुनो कात्या—"

अलेक्सी ने उधर मुँह भी नहीं फेरा। उसकी आँखें उस हरियाली पर लगी थीं—पुल के आगे जहाँ से इतनी तेज़ी से बाढ़ की लपटें निकल रही थीं।

"तुम छप्पर से मोटर निकाल सकती हो ?"

वह एकाएक चौंक पड़ी जैसे किसी ने उसकी छाती में घूसा मार दिया हो।

"बोलो निकाल सकती हो ?"

उसे उसकी तरफ़ देखने की फ़ुर्सत नहीं—उसकी आँखें उस हरी-भरी भूमिका पर टिकी थीं जहाँ से आग की लपटें निकल रही थीं।

"हूँ" उसने धीरे से कहा जैसे उसका कंठ बन्द हो गया हो।

"सुना नहीं—कात्या ?"

"हाँ—कहो न—"

"उस अल्मारी में वे ज़रूरी कागज़ हैं—सब लेकर मोटर में रख लेना और शहर चल दो। कर्नल को देना—समझी ?"

"न प्रीतम—मैं तुम्हें छोड़कर—नहीं—नहीं—"

"कात्या—तुरन्त चल दो—समझी—क्षण भर का विलम्ब—ठीक नहीं। जल्दी—सब ज़रूरी कागज कर्नल को देना—एक भी न छूटे—अल्मारी में हैं—समझी—कात्या—?"

"हाँ—समझी।"

उसे मुड़कर देखने तक की फुर्सत न थी—विदा देने तक की। और उसने नयी पेटी के लिए बढ़े हुए उसके हाथ को छूते-छूते अपने को रोक लिया।

"मोटर निकाल कर उसमें चल दो। एक दम हवा हो जाना। समझी—पिस्तौल ले लेना—सुना। और सुनो कात्या—उसमें सात गोलियाँ भरी हैं—कम से कम एकं—छोड़ रखना—शायद—कोई काम पड़े—समझी—कात्या ?"

"हाँ—समझ गई!"—और वह चुपचाप रेंगती हुई झाड़ी की ओर बढ़ी।

एकाएक उसने पुकारा—"कात्या! ठहरना, मेरा 'पार्टी कार्ड' लेती जाओ—औरों का भी ले लो। उन्हें भी वहीं जमा कर देना।"

उसने लाल छोटी पुस्तक ले ली। और सब के पास रेंग चली। पाँच—सिर्फ़ पाँच कार्ड उसे मिले।

"कात्या—भूलना मत—सुना—थोड़ा पेट्रोल बचा रखना। अगर कोई दुर्घटना आ पड़े तो समझी—सब जला देना—और सुनो सातवीं गोली

बचा रखना- -समझी—कात्या, अच्छा चलदो। अब देर न करो—कात्या, जितनी जल्दी हो सके।"

अब उसने गर्दन घुमाकर उसे देखा—उसकी सुन्दर—प्यारी-प्यारी आँखों को—

"अलेक्सी—"

"कात्या—छोड़ो यह सब—कात्या—नहीं।"

एकाएक उसके ज़ब्त का बाँध टूट गया। उसके प्रति अपने प्रेम और अनुराग की बाढ़ को वह न रोक सकी।

"कात्या हिम्मत बाँधो—सच्चा प्रेम यही है। देर हो रही है।"

ठीक, सच्चा प्रेम यही है। उसने अपने आवेश को दबाने के लिए अपने ओंठ दाँतों से दबा लिये और वह अपने सीने से उन लाल कार्डों को चिपकाये रेंग चली—कुछ दूर जाकर वह दौड़ी। मकान के पिछवाड़े ही छप्परों के नीचे मोटर खड़ी थी।

कात्या ने मोटर स्टार्ट कर दिया। दूर पर शत्रु भी उसकी आवाज़ शायद सुन सका हो—उसके पति के कानों में वह आवाज़ अवश्य पड़ी होगी।

"यही सच्चा प्रेम है—यही आदर्श प्रेम है—" वह अपने आप बड़बड़ाती रही—जैसे वह स्वप्न में बड़बड़ा रही हो। उसकी मोटर सड़क पर पहुँच गई थी।

उसकी मोटर भागी चली जा रही थी—सीधी, निर्जन, समतल सड़क पर। वायु उसके कानों में सायँ-सायँ कर रही थी—अगल बगल के वृक्ष, झोपड़े—पीछे छूटते चले जा रहे थे। मोटर हवा से बातें करती हुई आगे बढ़ी चली जा रही थी। और उसके कानों में उसके पति की आवाज़ गूँज रही थी—"तुरन्त चल दो—क्षण भर की देर ठीक नहीं।"

चौराहे पर उसे रुकना पड़ा—उसे रास्ता पूछना पड़ा। उसे रास्ते का हाल नहीं मालूम था। पहले-पहल वह उस मार्ग से गई थी। आज वह प्रथम बार अपने पति से अलग हुई थी।

आखिरकार वह नगर में पहुँच ही गई। उसकी जाँच हुई—वह टोकी गई।

उसने प्रत्येक प्रश्न का उत्तर दिया जैसे वह रटा हुआ हो। वह तुरन्त वहाँ पहुँचा दी गई जहां उसे पहुँचना था।

वहाँ पहुँच वह भागी हुई ऊपर दफ्तर में चली। उसे ऐसा जान पड़ने लगा मानों उसके पैर सीढ़ियों पर उठते ही नहीं—एक—दो—तीन—उफ़! उतावली में उसे ऐसा लगा मानों उनका अन्त ही न होगा। फिर एक द्वार—दूसरा—आखिर इसकी भी कुछ हद है? जिधर देखो—फौजी पोशाक में लैस जवान नज़र आते हैं—उसका दिल—हरी टोपी

लगाये सीमा-रक्षकों की ओर देखकर मसोस उठा।

मेज़ के समीप पहुँचकर उसने कहा—

"कमाण्डर अलेक्सी ने मुझे ये कागज़-पत्तर आपके पास पहुँचाने की आज्ञा दी थी।"

उसने सब कागज—पुलिन्दे, सामने रख दिये। सामने कुर्सी पर बैठे हुए व्यक्ति ने बड़ी गंभीरता से सबको सहेजा।

"अब तुम बैठ जाओ और थोड़ा विश्राम कर लो।"

वह कहना चाहती थी कि वह बिलकुल थकी नहीं है, पर उसके पैर काम न देते थे और वह कुर्सी पर बैठ ही गई। गोलियों की आवाज़ और मोटर की हचहच उसके कानों में गूँज रही थी।

सामने बैठे अफ़सर ने फोन उठा लिया—

"देखो ओरलोवका से मिलाओ—"

कात्या चुपचाप सुन रही थी।

"ओरलोवका—ओरलोवका—समझे—"

कात्या की साँस रुक रही थी। वह काँप रही थी। उसकी आँखें उस अफ़सर पर टिक गईं थीं। वह इसकी एक एक इङ्गित से सारा समाचार जान लेना चाहती थी।

"ठीक—है—ठीक—है।" कहकर उसने फोन रख दिया।

"क्या ख़बर है ?"

उसने कात्या के समीप पहुँचकर उसके ठण्ढे हाथ अपने हाथों में लेकर कहा—"ओरलोवका से कोई उत्तर नहीं मिला।"

"क्या लाइन बन गयी ?" उसके हाथ-पाँव ढीले हो रहे थे।

"हिम्मत करो—बहन—क्या किया जाय—यह तो युद्ध हैं—जर्मनों का ओरलोवका पर अधिकार हो गया।"

उसके कानों में अपने पति का वह गीत गूँज गया जो वह उसको सुनाया करता था—उसका वह प्यारा-प्यारा मुखड़ा उसकी आंखों में नाच गया।

पर उसने अपने को सँभाला।

"क्षमा कीजियेगा—मुझे अभी अपने पार्टी के दफ़्तर में जाना है !"

लोगों ने उसे वहाँ पहुँचा दिया।

फिर वह अफ़सर के समीप पहुँची—एक मेज़—एक लिखने वाला—और फिर उसका जी मसोस उठा। उसकी सूरत किससे मिल रही थी—ग्रीशा से—पहले-पहल वही खेत रहा। उसने फिर अपने को सँभाला—

"मैं पार्टी कार्ड लाई हूँ।"—और उसने अपनी कुर्ती से इन्हें बाहर निकाला—दस लाल पुस्तकें।

"कहाँ मिले? किसके हैं?"

कात्या ने अपने को सँभालकर दृढ़ता से उत्तर दिया—

"ये दस बन्धुओं के कार्ड हैं—दस सीमा-रक्षकों के—जो आज—भोर को अपने नियत स्थान पर जर्मनों का सामना करते हुए वीर गति को प्राप्त हुए हैं।"

वह अफ़सर उठ खड़ा हुआ। उसका सिर झुक गया। पार्टी कार्ड उसकी मेज़ पर पड़े थे—दस लाल छोटी पुस्तकाएँ—मेज़पोश पर वे दस जीवित रक्त-बिन्दु से लग रहे थे।

और वह वीर बाला अप्रभावित-सी, निर्विकार, मौन, निश्चल सामने खड़ी थी।

नीली साड़ी

अपने मित्र डाक्टर का दरवाज़ा खटखटाया नहीं था कि फिर वही दो चमकीली, काली आँखें सड़क के दरवाज़े के झरोखे से दिखाई पड़ीं। फिर पहले की भाँति मधुर ध्वनि में प्रश्न हुआ—'कौन ?' फिर, तुरन्त धीरे से दरवाज़ा खुला। ज्यों ही मैंने अपना नाम बतलाया कि एक सुन्दर युवती ने खेद प्रकट करते हुए कहा—"ओह, महोदय ! मुझे दुख है कि आपको व्यर्थ कष्ट करना पड़ा। डाक्टर महोदय अपने किसी मित्र से मिलने शहर गये हैं।"

कैसा सुन्दर और सभ्यता-पूर्ण यह उत्तर था। ऐसे अवसर पर अनपढ़ नौकरानियाँ और अल्हड़ लड़के कैसा रूखा जवाब देते हैं। इस युवती के उत्तर से शायद ही कभी मुझे तृप्ति हुई हो। मेरी इच्छा होती कि ज़रा और बातें करूँ। मैंने उससे पूछा—"डाक्टर महाशय कब गये हैं ? कब लौटेंगे ? इत्यादि।" मेरा उद्देश्य केवल उससे बातें करने का था। उस युवती से बातें करते समय मुझे ऐसा जान पड़ता, मानो मैं किसी भले घर की स्त्री से बातें कर रहा हूँ—एक साधारण परिचारिका से नहीं। मैंने

लज्जा-भरी दृष्टि डरते-डरते उसके चेहरे के ऊपर—फेंकी—ओह, कैसा प्यारा मुखड़ा था, परन्तु उसकी ज्योतिपूर्ण आँखों में मानों विषाद की छाया झलक रही थी। मैंने अनुभव किया कि जब मैं उससे अपने मित्र की सेवा में आने के पूर्व का वृत्तान्त पूछता था, तो वह उत्तर देने में आनाकानी करती थी।

मेरा विचार था कि डाक्टर से उस युवती के विषय में पूछूँ, परन्तु संकोचवश कभी मेरी हिम्मत न हुई। अंत में एक दिन जब संध्या समय बातों-बातों में मेरे और डाक्टर के बीच 'अविवाहित जीवन की निस्सारता' पर बहस चल पड़ी, तो मुझे अच्छा अवसर मिला।

"जहाँ तक मेरा अविवाहित जीवन है"—डाक्टर ने कहा—"मुझे तो कोई शिकायत नहीं है। मुझे उसके पूरे लाभ मिलते हैं और हानि के बारे में—जो बहुत शीघ्र उन्मत्त, अशुच और अनुभव-रहित लोगों को दुख देते हैं—मेरी 'यती' मुझे इससे बचाती है।"

"तुम्हारी यती"—मैंने कहा—"वही भली लड़की, जो मेरे आने पर दरवाजा खोला करती है। वह सचमुच बड़ी भली है। उसकी भलमनसाहत उसके प्रत्येक आचरण से टपकती है।"

"वह मेरे लिए सब कुछ करती है"—डाक्टर ने

कहा—"उसकी तारीफ़ नहीं करता, पर उसकी वजह से आप मेरी यह हालत देख रहे हैं। वह राइन प्रान्त की है। भाग्य से यहाँ यात्रा करते समय मेरे हाथ लग गई।

"मेरा भी यही ख़्याल था कि वह राइन प्रान्त की रहने वाली होगी। क्या इसके माता-पिता नहीं हैं? मैं बराबर इस पर सोचा करता हूँ, इसके भीतर क्या दुखभरा भेद है। उसे देखकर न जाने क्यों करुणा उत्पन्न हो जाती है।"

डाक्टर कुछ हिचकिचाये, पर फिर वे कहने लगे—

"मैं तुम्हें इस लड़की की कहानी सुनाता हूँ। मुझे विश्वास है, तुम मेरे सच्चे इरादे को समझोगे। अच्छा सुनो—अपने सफ़र में मैं एक दिन राइन नदी के तट पर पहुँचा। रविवार का दिन था। गिरजे का घंटा लोगों को प्रार्थना के लिए बुला रहा था। सुन्दर प्रसन्न लड़कियाँ मेरे पास से होकर निकल रहीं थीं। सभी देखने में ख़ुशहाल थीं। लड़के-लड़कियाँ सभी गिरजे की तरफ़ जा रही थीं। सभी लड़कियाँ सफेद साड़ियाँ पहने हुए थीं। ज्यों ही मैं मोड़ से आगे बढ़ा कि एक अजीब बात मेरे देखने में आई। एक सुन्दर लड़की नीली साड़ी पहने जल्दी-जल्दी अकेली चली जा रही थी। यह

यती थी। वह और लड़कियों के पास जाती तो सभी 'नीली साड़ी', 'नीली साड़ी' कह कर उससे दूर भाग जातीं और वह अकेली रह जाती। यती रोने लगी। हताश होकर एक पेड़ के सहारे टिक कर खड़ी हो गई। मैं पीछे ही खड़ा था। सब दृश्य देख रहा था। वह दुःख से सिसक रही थी। उस पर मुझे दया आ गई। मैंने देखा कि लड़कियाँ उसके पास से निकलतीं तो उसकी तरफ़ घृणा की दृष्टि से देखती हुई आपस में कुछ फुसफुसाती, अपनी सफेद साड़ी पहने चली जाती हैं और वह बेचारी रो-रोकर अपनी नीली साड़ी भिगो रही है।

"मैंने निष्कर्ष निकाला कि उनकी घृणा का सम्बन्ध अवश्य नीली साड़ी से है। पास से निकले हुए नवयुवकों की बातों से मुझे इसका और भी प्रमाण मिला। बेचारी लड़की इस तिरस्कार को सहन न कर सकी। वह बहुत देर तक वहीं जड़वत् खड़ी रही। फिर यकायक दृढ़ होकर वह धीरे-धीरे चल पड़ी मानो उसमें नई स्फूर्ति आ गई हो। मैं पीछे हो लिया। नदी तट पर वह रुक गई। मैं उसके पीछे ही था, पर उसने मुझे देखा नहीं। मैंने उसे हाथ जोड़ते देखा। चुपचाप उसने ईश्वर का ध्यान किया, फिर अपनी नीली साड़ी उसने फाड़ कर फेंक दी और उस नदी में…। उसने बहुत देर बाद

मेरे सराय के कमरे में आँखें खोलीं। मैं उसे यहीं उठा लाया था। मुझे गाँववालों के प्रपंच का भय न था। यहाँ उसे होश आया था। मैंने उसे बतलाया, कि मैं कौन हूँ। मैंने उसे समझाया कि मैं उसका इलाज कर रहा हूँ।

"उसने मेरी बात मान ली और वह तुरन्त सो गई। मैं इस पर प्रसन्न हुआ कि वह सुख की नींद सो रही है। इसी बीच मैंने सराय के मालिक से उसके बारे में पूछा। उसने बहुत सा नमक-मिर्च लगाकर उसकी कथा कही। मुझे सच बात का पता लगाते देर न लगी। उसका निष्कर्ष यह था—यह गाँव—जहाँ मैंने इस लड़की की जान बचाई थी—उसका जन्म-स्थान था। यह स्थान ऐसी जगह था, जो दुनिया के किनारे था। यहाँ के लोग अपनी पुरानी बातों को लिये बैठे थे। वह लड़की माता-पिता से वंचित थी। लड़कपन से ही उसे एक बूढ़ी महिला ने अपनी पुत्री की भाँति पाला था। उस महिला को उपन्यास पढ़ने का बड़ा व्यसन था। उस महिला के उपन्यासों का असर इस लड़की पर भी पड़ा था। सस्ते नाविलों का जैसा विषैला असर होता है। एकांतवास, संसार के अनुभव का नितांत अभाव, कल्पना-शक्ति की अप्रौढ़ता, सब ने मिल कर उसे कुमार्ग दिखलाया। एकाएक यती की संरक्षिका का

देहावसान हो गया। वह उसके लिए कुछ कर भी न सकी। यती फिर निस्सहाय हो गई और ऐसी अवस्था में जब उसके स्वभाव में विचित्र परिवर्तन हो रहा था। सुख और शांति में पली हुई, वह विवश होकर गाँव की सराय में काम करने लगी। यहाँ राइन नदी से जानेवाले अनेक यात्री ठहरा करते थे। यती अपनी गुणशीलता से शीघ्र ही सराय के मालिक और उसकी स्त्री की कृपा-पात्री बन गई।

"जब मैंने उसे विश्वास दिलाया कि मुझे उसकी सारी कथा मालूम है, तो एक दिन यती ने स्वयं मुझसे कहा—वहाँ एक चित्रकार आया था। उसकी आँखें तेजयुक्त थीं, बाल घुँघराले, वह नगर का रहनेवाला था, युवक था। उसकी बातों से विश्वास उत्पन्न होता था। वह देखने में हँसमुख था। वह एक अमीर आदमी के साथ आया था और इसलिए उसका प्रस्थान अपनी इच्छा पर न था। बस वह इतने भर के लिए ठहरा। दो चित्र उसने बनाये—दो अँगूठियों का परिवर्तन हुआ। उसने वचन दिया—वह वचन जिसने बेचारी यती का जीवन किरकिरा कर दिया। उसका कहना था—फिर भी चित्रकार चला गया, अपनी इच्छा के विरुद्ध संसार में न जाने कहाँ चला गया, परन्तु यती छली गई और उसकी चर्चा चारों ओर फैलने लगी। लज्जा और ग्लानि से वह मरी

जा रही थी। इस प्रकार कुछ दिनों तक वह अपने दुख में, लज्जा में घुलती रही और उस रविवार को उसने घर से बाहर पैर रखना निश्चय किया। यही दिन मेरे वहाँ पहुँचने का था। गिरजे का बाजा मानो लोगों को निमन्त्रण दे रहा था। यती के हृदय में मानों यह इच्छा प्रबल हो रही थी कि वह जाकर उस देवस्थान में अपने हृदय का भार हलका करे और अपने पाप का बोझ उतारे। उसने अपने अच्छे-अच्छे वस्त्र माँगे। सराय की नौकरानी ने उसके सामने वस्त्र खसका दिये। उसने सब पहने, आइने में अपने बाल ठीक किये और अपनी सफ़ेद साड़ी के लिए हाथ बढ़ाया, पर उसे सफेद के स्थान पर नीली साड़ी रखी हुई मिली। उसने नीली साड़ी की कथाएँ सुनी थीं, पर उसका कटु अनुभव उसे न था।

"उस गाँव की प्रथा के अनुसार यती जैसी दोषी लड़कियों को सदा नीली साड़ी पहननी पड़ती थी। उद्देश्य यह था कि उनका पाप सदा लोगों के सामने रहे। गिरजों में कोई उन्हें अपने साथ न खड़ा होने देगा। उत्सवों में उनका कोई साथी न होगा। लोग उनका तिरस्कार करेंगे, उन्हें चिढ़ायेंगे—यह तो नीली साड़ी पहनती है। यती को ज्ञात न था कि साधारण सा वस्त्र उसे कितना दुःख पहुँचा सकता है।

किसी ने भी उसकी प्रार्थना न सुनी। किसी ने भी उसे एक फटी सफ़ेद साड़ी न दी। वह कुछ देर तक सोचती रही। अन्त में उसने हिम्मत की। उसने नीली साड़ी को पहना और बाहर निकल पड़ी। उसका विचार हुआ कि अन्य लड़कियों के साथ हिल-मिल कर वह गिरजाघर जाय। उसके साथ की खेलनेवालियाँ फुदकती हुई जा रही थीं, पर कोई उसकी ओर फूटी आँखों से भी न देखती थी। उसका कैसा स्वागत हुआ, यह मैंने अपनी आँखों देखा। उसका हाल तुम सुन ही चुके हो।

"सोते जागते बेचारी को इसका दुख रहता। मैंने उससे एक दिन कहा कि मैं नगर जा रहा हूँ उसे भी साथ ले जाऊँगा और उसे अपने घर का कारबार सौंप दूँगा। मेरी सिधाई पर, मेरी करुणा तथा अचानक प्रस्ताव पर वह साथ आने को राज़ी हो गई। मैंने अपना वचन निबाहा। अब उसे यहाँ किसी वस्तु की कमी नहीं है। है तो केवल—"

"हाँ शायद उस चित्रकार के दर्शनों को—" मैंने टोक कर कहा—"जिसने उसे ठगा है।"

"इसका तो यहाँ काफी अवसर है"—डाक्टर ने कहा—"चित्रकार का हृदय, अब भी वह कहती है, बुरा न था, परन्तु यदि मैं उसके लिए कुछ कर सकता...। क्यों तुम्हारी क्या राय है?"

"मैं तो कहता हूँ, यह बड़ा भारी उपकार होगा डाक्टर! एक टूटे दिल को जोड़ना। वाह! क्या कहना है। मैंने कभी जासूस का काम नहीं किया है, पर यदि कहीं वह चित्रकार मिल जायगा, तो मैं उसे याद दिलाऊँगा कि उसने कितना भारी अपराध किया है—उसने एक निर्दोष बालिका को छला है; यदि वह कहेगा कि मैं उसका प्रायश्चित करूँगा, तो मैं उसे तुम्हारे पास लाऊँगा। डाक्टर, वह बड़े सौभाग्य का दिन होगा।"

चुपचाप हम दोनों ने हाथ मिलाये। इसी बीच यती कमरे में आई। जब हम दोनों ने उसकी ओर आँखें फेरीं, तो उसने अवश्य देखा होगा कि हमारी आँखें सजल थीं।

धाई

वह आदमी ज़ोर ज़ोर से हाँप रहा था। वह झल्लाया और घबराया हुआ था। "बड़ी मुश्किल से तुम्हारा पता पा सका। अपने मकान से ही होकर अँधेरे में निकला बार-बार—" उसने अपनी टोपी से बर्फ़ झाड़ते हुए कहा, "यही काम अल्लाऊ अस्पताल है ?"

"हाँ—यही है।" —उत्तर मिला—"क्यों, कुछ काम ?"

"कुछ काम ? पीछे गली में एक औरत को बच्चा होने वाला है—और क्या काम ?"

"आप कौन हैं ?"

"कौन हूँ ! राह-चलता हूँ—रात को अपनी ड्यूटी से छुट्टी पाकर घर लौट रहा था। जल्दी करो ! मैं साथ चलता हूँ। अजीब तमाशा है—मैं रास्ते चला जा रहा था और वह रास्ते में पड़ी कराह रही थी—अकेले—आस-पास चिड़िया का पूत नहीं ? अकेले क्या करता—क्या कर सकता था—यह मेरे बस की बात न थी ?"

बात की बात में अस्पताल की धाई, इरीना एक

नोकर को लेकर उस अपरिचित के साथ बर्फ़ में ठोकर खाती, रास्ता ढूँढती चली। घोर अँधेरा छा रहा था। आस-पास के मकान निहंगे, काले पहाड़ से खड़े थे—निश्चल—निर्जीव। कहीं से प्रकाश की कोई रेखा तक नहीं दिखाई पड़ रही थी—और सड़कों पर बर्फ़ानी तूफ़ान चल रहा था। वायु में तुषार के कण अँधड़ मचा रहे थे। और कुछ दूर पर ऐसा लग रहा था मानों रात के पहरेदारों की छाया चमकीले, चिकने, निर्मल बर्फ़ की सतह पर नाच उठती थी, जो अँधेरे में उस सड़क से चुपचाप गुज़र जाते थे।

एकाएक वे गर्फ़ से ढँकी भूमि पर बैठ गये—एक दूसरे से सट कर। 'सर्!' की आवाज़ सुनाई पड़ी—धीरे-धीरे वह समीप आई। उन सब ने अपने सिर नीचे कर लिये। कहीं पर किसी कोने से लाल लपट ऊपर की ओर उछली और बात की बात में भयानक धड़ाका सड़कों पर गूँज गया—आस-पास की इमारतें हिल उठीं—उनकी छतों पर जमी बर्फ़ और ओतियों से लटकी बर्फ़ की झालर छिटक कर नीचे सड़क पर बिखर गयी।

"चोट तो नहीं लगी उस बेचारी को,"—इरीना के मुख से निकला।

"चिन्ता न करो, वह सड़क के उस तरफ़ है। वहाँ ढूँढना"—उस अपरिचित ने कहा, "वहाँ उस

लालटेन के खम्भे के समीप वह बैठी थी। मैं तो चला—आज रात को जान पड़ता है भयानक गोलाबारी होगी—मुझे अभी घर पहुँचना है।"

इरीना ने बच्चा जनाने का काम नहीं सीखा था। वह केवल अस्पताल में नर्स का काम करती थी। पर इस समय तो उसे उस स्त्री को ढूँढकर उसकी मदद करनी ही थी जो प्रसव-पीड़ा से व्यथित हो रही थी। उसे कुछ सोचने का समय न था। उसकी कौन मदद करने वाला था—इस अँधेरी सुनसान रात में—बर्फ़ और आँधी में! सिर के ऊपर से सर-सर करते, फुफकारते गोले निकल रहे थे। इरीना अपने नोकर के साथ उसे ढूँढती चली। रह-रहकर वे बर्फ़ की धूहे के निकट रुकते, कान लगाकर सुनते फिर आगे बढ़ जाते—उन्हें आशंका थी कि कहीं वह औरत बर्फ़ से ढँक न गयी हो।

दाहिनी ओर से एक कराह सुनाई पड़ी—वे दोनों उधर ही दौड़ पड़े। ठीक जहाँ उस अपरिचित व्यक्ति ने बतलाया था—ठीक लालटेन के स्तंभ से कुछ हट कर, एक मकान के तालालगे द्वार से पीठ टेके, वह बेचारी औरत बैठी कराह रही थी। इरीना उस स्त्री के सामने झुक गयी और उस स्त्री ने उसका हाथ अपने हाथों में ले लिया। वह काँप रहा था—जल रहा था।

अब उस औरत को अस्पताल तक ले जाना असंभव था—उसे दर्द उठ रहा था। वह उस बर्फ़-ढँकी भूमि पर बच्चा जन रही थी—उस भयानक अँधेरी रात में, जिसे केवल फटनेवाले प्राणघातक गोलों की चमक ही प्रकाशित कर रही थी। इरीना ने आस पास आँखें दौड़ाईं। सर्वत्र श्मशान सा सन्नाटा छाया हुआ था। रह-रहकर बर्फ़ का झोंका उसके कोट के भीतर पहुँच रहा था, उसका हाथ ठिठुर रहा था—और उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था—ऐसी तेज़ी से कि उसके कानों में उसके शब्द सुनाई पड़ रहे थे। उसे ऐसे लगा मानों यह वह लेनिनग्राड नहीं रहा—वरन् यह कोई वीरान, बयाबान, तोप के गोलों की गर्जन से गूँजता हुआ अँधकारमय लोक है। उस तालेपड़े दरवाज़े से कुछ भी आशा करनी बेकार थी। किसी को पुकारने का कोई अर्थ न था। सड़कें सुनसान थीं। प्रातःकाल के पहले उन पर किसी मनुष्य का दर्शन पाना दुर्लभ था। फिर भी यहाँ उस अंधेरे में, उस खुली जगह में, आँधी बर्फ़ में, एक नव जीव की उत्पत्ति हो रही थी। उस नवजात शिशु की रक्षा करनी होगी—उसकी, उसे अँधेरे, अँधड़ बर्फ़ और फटते हुए गोलों से रक्षा करनी होगी। इरीना के कानों में गोलों का गर्जन जैसे सुनाई ही नहीं पड़ रहा था। उसने उस

औरत को सभाँला—जैसे बना उसकी सहायता की। बच्चा 'कहाँ-कहाँ' करता हुआ धरती पर आ गया। इरीना ने प्रसन्नता से उछलकर बच्चे को अपने दोनों हाथों से ऊपर उठा लिया—मानों वह अँधकार में सोते हुए उस विशाल नगर को इस रात की करामात का प्रदर्शन करना चाहती हो। फिर उसने उसे अपनी छाती से चिपका लिया—उस सद्यःजात, रोते हुए नन्हें से जीव को। और उसे इरीना ने अपने गर्म कोट के भीतर छिपा लिया और वह सद्यः जमे हुए बर्फ पर चल पड़ी। उसके पीछे उसका सहायक नव-प्रसूता को संभालता चला। वह थकी, निशक्त, पैर घसीटती हुई चल रही थी, पत्रिवत् अस्त व्यस्त! उसने एक स्थान पर ठोकर खाई। उसने धीरे से अपने पपड़ियाते हुए ओंठो को हिलाकर कहा, 'छोड़ दो मैं चल सकती हूँ।' वह सहायक नोकर स्वयं थका और परेशान था—केवल इतना ही कहकर ढाढ़स दिला रहा था—"अब पहुँच गये—अब ज़्यादा दूर नहीं!"—

वर्फ़ानी अँधड़ उनकी आँखों में तुषारकण झोंक रहा था। कंपाते हुए प्रत्येक धड़ाके के साथ ऊपर से खिड़कियों के शीशों के टुकड़े बरस रहे थे। पर वे चले जा रहे थे—बढ़ते हुए, विजयी की भाँति—नीरव, निविड़, निशा पर विजय पाने वाले—उस बर्फ़

और गोलेबारी की भयानक रात पर विजयी। यदि अवसर होता तो इस शानदार विजयी जुलूस को सारे नगर में घूमा दिया जाता—उसी प्रकार हाथ में उस नवजात शिशु को लिए—उस नन्हे निर्दोष आत्मा को, जिसने हमारे नगर में इस अद्भुत मूहूर्त में अवतार लिया था।

जच्चे को मालूम हो गया कि उसे पुत्री उत्पन्न हुई थी। रह-रहकर वह इरीना की ओर अपने बाहु फैला देती, जैसे वह उसे रोककर अपने बच्चे को ले लेना चाहती हो—फिर वह हाथ नीचे कर लेती और आगे बढ़ जाती।

आख़िर वे अस्पताल में पहुँच गये। वह प्रसूता आराम से मुलायम गर्म बिस्तर पर लिटा दी गयी—उसकी पूरी देख-रेख की गयी। जब उसका जी कुछ स्वस्थ हुआ तब उस नव-प्रसूता ने इरीना को बुला भेजा और उसके कानों के समीप मुँह ले जाकर उसने धीरे से पूछा—केवल दो शब्द—

"तुम्हारा नाम ?"

"मतलब ? क्यों पूछती हो ?"—इरीना बोली।

"बतलाओ न !"

मुझे लोग इरीना कहते हैं। क्यों पूछ रही हो ?"

"मेरी लड़की का नाम इरीना होगा—तुम्हारी स्मृति में—तुम्हारे प्रति मेरी कृतज्ञता के चिन्ह स्वरूप

—तुमने मेरी जान बचाई। मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकूँगी—"

और उस नवप्रसूता ने उस धाई को तीन बार चूम लिया—उसकी आँखें आर्द्र हो रही थीं।

इरीना उसकी ओर न देख सकी—उसने अपने आँसू छिपाने के लिए मुँह फेर लिया—पर वह सिसकियाँ भरने से अपने को न रोक सकी। क्यों? यह वह स्वयं नहीं समझ पाई।
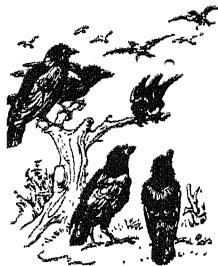
नाई

भोर होते ही दो लाल सैनिक, एक बूढ़े, कमर-झुके हुए आदमी को लेकर मेजर के झोंपड़े में पहुँचे। बिना कुछ कहे उन सैनिकों ने मेजर की मेज़ पर एक पासपोर्ट, एक अस्तुरा, और एक ब्रुश रख दिया—बस इतना ही उस बूढ़े के पास निकला था। फिर वे बोले कि यह व्यक्ति कूएँ के समीप नाली में पकड़ा गया। बूढ़े से पूछा गया। उसने बतलाया, वह आरमीनिया का रहने वाला नाई है—मारिपोल के थियेटर में वह नौकर था। उसने अपनी मज़ेदार कहानी सुनाई जो उन सिपाहियों की टोली में हर एक के ज़बान पर घूम गई।

जर्मनों के आने के पहले वह नाई उस नगर से निकल न सका था। उसने थियेटर के तहखाने में अपनी जान बचाई—इसके साथ उसके यहूदी पड़ोसी के दो छोकरे भी छिपे थे। एक दिन पहले, लड़कों की माँ रोटी खरीदने शहर गई थी पर लौट न सकी। शायद वह हवाई हमले का शिकार हो गई थी।

इस तहखाने में वह नाई रात-दिन छिपा रहा—लड़के उसके साथ थे। भय से लड़के दुबके हुए थे—

उन्हें नींद भी नहीं आ रही थी। दूसरे दिन छोटा लड़का रोने लगा—उसका रोना बन्द ही न होता था। नाई ने उसे बहुत पुचकारा, समझाया तब कहीं वह चुप हुआ। उसने बोतल में पानी भरकर उसे पिलाया। उसे प्यास लगी थी—इसने गट-गट कर समूचा बोतल पी डाला। फिर वह कुछ शान्त हुआ।

दूसरे दिन एक नाज़ी सैनिक ने उन्हें ढूँढ़ निकाला और वे तीनों घसीट कर अफ़सर के सामने पेश किये गये। लेफ़्टनेन्ट फ्रिडरिच कोलवर्ग एक दाँत बनाने वाले के खाली घर में अड्डा जमाये हुए था। टूटी-फूटी खिड़कियों की चलतू मरम्मत की गई थी। सारा मकान ठण्डा और अँधेरा था। समुद्र की ओर से बर्फ़ीली तेज़ हवा के झकोरे आ रहे थे।

कोलवर्ग अंगीठी के समीप सिकुड़ा बैठा था—रह-रहकर वह टूटी-फूटी कुर्सियों के टुकड़े आग में झोंकता रहता। जब वे सैनिक उन बन्दियों को लेकर पहुँचे, उसने पूछा—"क्या है?" सबके सब द्वार पर खड़े थे। एक सैनिक ने उत्तर दिया, जो संभवतः जमादार था—"तीन बन्दी हैं—हज़ूर!"

"तीन?—तीन कहां—?"—लेफ़्टनेण्ट ने धीरे से कहा, "ये छोकरे तो यहुदी हैं और वह बूढ़ा—यूनानी जान पड़ता है—क्यों? तुम आरमीनिया के रहने वाले हो न? क्या सबूत है? बोलो!"

वह नाई चुप ही रहा। किसी चित्र का सुनहला चौखटा आग में झोंकता हुआ वह लफ्टनेण्ट गर्जा, "इन कैदियों को पास के किसी खाली कमरे में रखो !"

संध्या को लेफ्टनेण्ट अपने दोस्त एक अर्ली नामक उड़ाके को साथ लेकर पहुँचा। वह मोटा, भद्‌भदु किस्म का आदमी था। दोनों बगल में बड़े-बड़े बोतल दबाये थे। लेफ्टनेण्ट ने लड़कों को मेज़ पर बैठा दिया। एक बोतल खोल उसने एक गिलास भर लिया।

"तुमको नहीं मिल सकता,"—उसने उस बूढ़े यूनानी नाई की ओर देख कर कहा। "तुम्हें मेरी हजामत बनानी होगी—मुझे आज तुम्हारे नगर के सुन्दरी के दर्शन करने जाना है।"

लेफ्टनेण्ट ने लड़कों का मुँह खोल उनके गले में जबर्दस्ती पूरे गिलास भर मदिरा उड़ेल दी। बच्चों को सुनसुनी चढ़ गई—उनका दम घुट गया—उनकी आँखों में आँसू आ गये। फिर उसने अपने मित्र से जाम लड़ाया और गट-गटकर समूचा गिलास ढकोल गया। बोला, "भलमनसाहत का तरीक़ा मुझे पसन्द है—अर्ली।"

फिर उसने तीव्र मदिरा का दूसरा गिलास उन लड़कों के गले से उतार दिया। वे छटपटाये, झिझके

पर लेफ़्टनेण्ट ने उनके हाथ पकड़ उन्हें बरबस पिला कर ही छोड़ा। छोटा लड़का उल्टी करने लगा। उसकी आँखें लाल हो रही थीं और वह भूमि पर घिसक पड़ा। फिर बड़ा लड़का चीख़ने लगा—हृदय विदारक चीख़! उसने आँखें फाड़कर अपने शत्रु को देखा—भयभीत! फिर वह भी भूमि पर उतर गया और द्वार की ओर चला। नशे में उसे कुछ सूझ नहीं पड़ रहा था—और वह दीवार से टकरा कर चीख़ उठा—फिर वह बेसुध हो गया।

"रात में दोनों मर गये," उस नाई ने कहा, "उनकी लाशें काली-काली दीखती थीं, जैसे उनके ऊपर बिजली गिरी हो।"

"फिर क्या हुआ?—" लाल सेना के मेजर ने हाथ में पासपोर्ट लेते हुए पूछा। वह काग़ज़ चरमरा रहा था और मेजर का हाथ कांप रहा था।

"आप कहानी का अन्त सुनना चाहते हैं? जैसा हुकुम। सुनिये! उस लेफ़्टनेण्ट ने मुझे हजामत बनाने की आज्ञा दी। वह नशे में चूर हो रहा था, नहीं तो यह काम वह कभी मेरे सिपुर्द करने की मूर्खता न करता। उसका दोस्त चला गया। मैंने लोहे के भारी शमादान पर मोमबत्ती जलाई—चूल्हे पर पानी गर्म किया और उसकी दाढ़ी पर साबुन फेंटने लगा। मैंने शमादान एक मेज़ पर ला रखी—

आइने के समीप। डाढ़ी पर ब्रूश चलाते-चलाते मैंने एक हाथ उसकी दाहनी आँख पर मार दिया। उसने आँखें मूँद लीं—और अभी वह कुछ कह भी न पाया था कि मैंने भारी शमादान उठाकर उसकी चिकनी खोंपड़ी पर दे मारा!"

"मार डाला?"—मेजर ने टोक कर पूछा।

"एकदम! फिर मैंने अपना रास्ता पकड़ा और दो दिन बाद यहाँ आ पहुँचा हूँ।"

मेजर की आँखें अस्तुरे पर जा पड़ीं। वह कुछ सोच ही रहा था कि वह बूढ़ा नाई बोल उठा—"समझ गया, आप क्या सोच रहे हैं—आप सोचते होंगे मैंने अस्तुरे से क्यों नहीं काम लिया। वह ज्यादा ठीक होता। होता तो जरूर ठीक, पर बात यह थी—आपसे क्यों छिपाऊँ, अस्तुरे से मैंने दस साल से अपनी रोटी कमाई है—उससे कोइ और दूसरा काम मैं लेना पसन्द नहीं करता।"

घर का प्रबन्ध

'कहाँ हो ? ज़रा सुनना तो । एक ज़रूरी बात है'—पति ने पुकारा ।

गृहिणी ने अपने पति की ओर देखा जैसे उसने उस गम्भीर, रोबीले, शान्त आदमी को आज पहली बार देखा हो । बहुत दिनों से वह न मुस्कराया, न प्रेम से बोला था ।

'जानती हूँ क्या कहोगे ?'

'सच ? कैसे जानती हो ?'

'मेरा मन कहता है—तुम क्या कहोगे । अच्छा, कहो ।'

'यहां और तो कोई नहीं है; बच्चे इसे न सुनें—'

'लड़की पानी लेने गई है । मैं समझ गई तुम क्या कहना चाहते हो, देख लेना, चाहे—मेरी बात जो ग़लत निकले । जब से पड़ोसी मारा गया, मैं देख रही हूँ तुम्हारी हालत—किस शान की मौत मरा वह—अपने नगर की रक्षा करता हुआ । हमें—हम सब को इन शत्रुओं—शैतानों से बदला लेना है । दुष्ट—पापी ! तुम अपने भाई का बदला लेना चाहते हो ? क्यों, ठीक कहती हूँ न ? तुम फौज में भरती

होना चाहते हो—क्यों यही न ? तुम जर्मनों से लड़ने जाना चाहते हो—क्यों यही न कहना चाहते हो ? मैं क्या झूठ कहती हूँ ?'

पति ने प्रसन्नता से लपक कर अपनी बूढ़ी गृहिणी को हृदय से लगा लिया । बोला—

'तुम तो मन के भीतर की बात पढ़ने लगी जी ! ठीक ही तुमने कहा—और क्या । बात यह है मैंने भरती का फार्म भर दिया है । अब समझी । अब मैं लाल सेना का एक सिपाही होने जा रहा हूँ—अपने देश की रक्षा के लिए । मुझसे यहाँ घर बैठे काम न होगा—मेरा खून उबला करता है—मैं सिपाही रह चुका हूँ—पिछली लड़ाई में मैं जर्मनों से लड़ चुका हूँ—क्या मुझे सीखना होगा—मैं अब सीधे लाम पर जाऊँगा—समझी ।'

'ठीक ही है'—गृहिणी बोली—और वह खिड़की के पास पहुँच कर बाहर झाँकने लगी कि उसकी लड़की लौट रही है या नहीं । सड़क पर भीड़ लगी थी मानों लोगों को आज छुट्टी थी । सभी पैदल चल रहे थे क्योंकि आज मोटर गाड़ियाँ बन्द थीं । लोग अपने सामान—बोरे—लकड़ियाँ आदि ठेलों पर रखे खींचे चले जा रहे थे । किसी-किसी पर बूढ़े औरत-मर्द भी बैठे थे । कुछ लोग टब, बाल्टी और छोटे-मोटे बर्तनों में पानी भरे ठेले चले जा रहे थे ।

बर्तनों से पानी छलक कर बर्फ़ से ढँकी सड़क पर गिरते ही जम जाता था। भयानक सरदी पड़ रही थी। समुद्र की ओर से बर्फ़ानी झोंके, बर्फ़ के कण लोगों की आँखों में झोंक देते थे। सभी अपने मुख पर गुलूबन्द बाँधे हुए थे जिससे उनका आधा चेहरा दिखाई नहीं पड़ता था। गृहिणी कुछ देर तक उन आते-जाते लोगों को देखती रही। उन राह-चलतों के मुख से निकली भाप जम कर उनके गुलूबन्द पर झालर सी लटक पड़ती थी। इस भीड़ में गृहिणी को अपनी लड़की का पता पाना कठिन था, जो बाल्टी लेकर लौटने वाली थी। अब वह आती ही होगी!

'मुझे भी कुछ कहना है', गृहिणी ने खिड़की से मुँह फेर कर कहा। 'मैंने भी सोच लिया है। तुम अगर लाम पर जा रहे हो तो मैं भी तुम्हारी जगह फैक्टरी में काम करूँगी। मुझे भी रोकना नहीं—मेरी बात मानो। हमारा नगर शत्रुओं से घिरा है। लोगों की यातना का अन्त नहीं। सुनते हैं अब यहीं लड़ाई होगी—यही लोग कहते हैं। और यह हुए बिना न रहेगा। और अगर तुम अपने भाई का बदला लेने जर्मनों से लड़ने चले तो मैं भी तुम्हारी जगह फैक्टरी में काम करूँगी। मैं अभी काम कर सकती हूँ—मुझे काम पसन्द भी है। तुम चिन्ता न करो। मुझे

भी बुद्धि है—मैं काम कर सकती हूँ। विश्वास रखो तुम्हारी हँसाई न होने दूँगी। मेरे कारण तुम्हें लज्जित नहीं होना पड़ेगा। मैं पहले भी काम करती थी। आखिर मैंने छोड़ा क्यों—बच्चों के ही कारण तो।'

'लेकिन बच्चे तो क्या कहीं चले गये'--पति ने कहा।

'पर अब वह बात नहीं रही ?' गृहिणी ने कहा

'क्यों, लड़का अभी छोटा है। लड़की की उम्र ही क्या है; बारह साल। बेचारी कमजोर नन्हीं सी है। अगर हम दोनों चले जायंगे तो उनकी देख-रेख कौन करेगा ? घर चौपट हो जायगा। यह भी सोचा है घर की क्या दशा होगी ?'

'सब सोच लिया है—अच्छी तरह सोच लिया है। लड़कों को उनकी चाची के घर भेज दूँगी। उनके बच्चे भी हमारे जैसे हैं। फिर हम आज़ाद हो जायँगे। यह समय घर द्वार सोचने का नहीं है। पता नहीं हम एक दूसरे को देख सकें—न देख सकें। दुश्मन हमारे द्वार पर खड़ा है। हमारे घरबार उजाड़ रहा है। हमें उससे लड़ना होगा—उसका सामना करना होगा—हम हाथ पर हाथ धरे तो नहीं बैठ सकते। हमारे

लिए दूसरा कौन लड़ने आयेगा। क्यों, मैं झूठ कहती हूँ ?'

'कहती तो तुम ठीक हो'—पति ने सिर हिला-कर कहा, 'कहती तो तुम बिल्कुल ठीक ही हो—हमारे लिए कोई दूसरा लड़ने न आवेगा।'

लड़की आ पहुँची। पानी की बाल्टी रख वह रसोई में पहुँची और चूल्हे के सामने बैठ कर हाथ सेंकने लगी! उसके हाथ ठण्ड से नीले पड़ रहे थे। उसने अपने माता-पिता के चेहरे पर कोई नई बात पाई।

'माँ!' उसने पुकारा, 'क्या बात हुई? बात क्या है? कुछ है जरूर। क्या कोई मारा गया? सच-सच बता माँ, मुझ-से छिपाना मत! माँ—'

'छिपाना क्या है—बेटी', माँ ने कहा, 'अपने भींगे कपड़े उतार डाल—और सुन हम लोगों ने क्या तै किया है,' उसने एक गहरी साँस ली और जल्दी-जल्दी कहने लगी, 'तेरे पिता लाम पर जा रहे हैं और मैं कारखाने में उनकी जगह काम करने। हमारा विचार है कि बच्चों को चाची के यहाँ गाँव में भेज दूँ—वहीं रहें—तेरी क्या राय है?'

लड़की ने चूल्हे में लकड़ी उसका दी—आग

से लौ निकलने लगी। उसे देखती हुई उसने पूछा, 'हम लोगों को चाची के घर क्यों भेजती हैं?'

'बात यह है तुम सब अकेले कैसे रहोगे—घर पर कौन रहेगा। तुम लोगों के लिए कौन रोटी लायेगा, कौन बाज़ार से लकड़ी लायेगा—कौन पकायेगा—बच्चू की देख-भाल कौन करेगा? यह सब कैसे होगा? अकेले तुम दोनों कैसे रहोगे?'

'माँ, मैं तो चाची के घर न जाऊँगी—बच्चू को भी न भेजिये। वह हमेशा सुनाती रहती है। हम घर पर रहेंगे—तुम चिन्ता न करो—मैं सब कर लूँगी।'

वह उठ खड़ी हुई और वह अपने कपड़े उतारते हुए दृढ़ता से कहने लगी—'क्या मैं अभी सब काम नहीं कर लेती? पानी लाती हूँ—मैं सब संभाल लूँगी। मैं लकड़ी ला सकती हूँ—खाना बना सकती हूँ, मैं बाज़ार कर लूँगी। राशन की दूकान से सामान ख़रीद लाऊँगी। भइया को खिला-पिला दूँगी—क्या वह सब अभी मैं नहीं कर लेती। मैं क्या बच्ची हूँ—मैं सब कर लूँगी—विश्वास रख माँ! पापा और तुम दोनों जहाँ चाहते हो जाओ—हमारी चिन्ता न करो—तुम्हें जाना है जाओ। मैं दिन भर सब संभाल लूँगी—शाम को तो आओगी

ही—थोड़ी ही देर के लिए सही—फिर मैं सब सँभाल लूँगी—चिंता न कर माँ—थोड़ी-सी तकलीफ भी होगी तो क्या—सब ठीक ही है—सभी को आजकल कष्ट है। चाहे जो कुछ हो हम घर ही पर रहेंगे। मेरी माँ, तू बिलकुल चिन्ता न कर—सब ठीक हो जायगा—माँ—मेरी बात मान—और फिर यह तो युद्ध का ज़माना है—थोड़ी तकलीफ ही सही—समझी—माँ—मेरी बात मान—।'

माँ बाप ने तब अपनी नन्हीं सी बेटी का मुँह चूम लिया।

मुद्रक—ए० बी० वर्म्मा, शारदा प्रेस, नया-कटरा—प्रयाग।